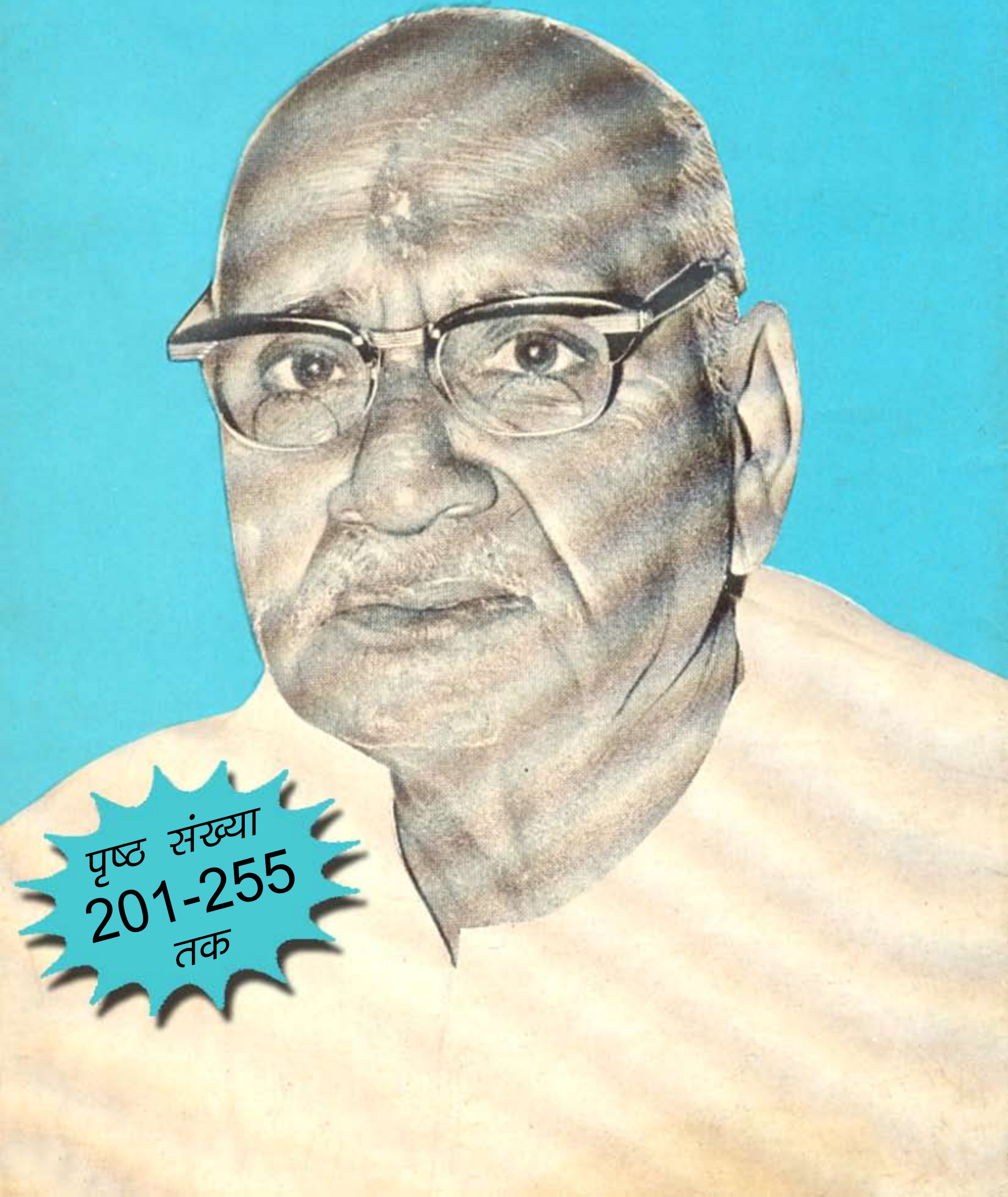
संत हृदय श्रीपोद्दारजी



पृष्ठ संख्या
201-255
तक

सत्संगमें कैसे जाऊँ। मेरी गम्भीर हालत देखकर कृष्णाके पिताजी (मेरे जीवनसर्वस्व श्रीमाधवशरणजी श्रीवास्तव) ने कहा— सत्संगके लिये रिक्शेपर बैठकर चली जाओ।

भले उन्होंने ऐसा कहा, पर मुझे बहुत संकोचका अनुभव हुआ यह सोचकर कि जब रिक्शा फाटकमें प्रवेश करेगा तो बाबूजी देख लेंगे कि यह रिक्शेपर आ रही है और फिर वे सोचने लगेंगे कि आज यह रिक्शेपर क्यों आ रही है। यह सब सोचकर मैं सत्संगमें नहीं गयी। सारे दिन मन उदास रहा। फोड़के कष्टसे मैं इतनी अधिक परेशान थी कि अगले दिन भी सत्संगमें जाना नहीं हो पाया। अपने घरमें बड़ा दुख मानती हुई मैं चटाईपर बैठी हुई थी। उधर सत्संगके पूर्ण होनेपर बाबूजीने कृष्णाके पिताजीको बुलाकर पूछा— दो दिनसे अगमा सत्संगमें नहीं आ रही है। वह तो कभी भी नागा नहीं करती थी, क्या बात है?

कृष्णाके पिताजीने फोड़के कष्टवाली बात बाबूजीको बता दी। ज्यों ही बाबूजीने सुना, वे सारे काम छोड़कर मुझे देखनेके लिये तुरन्त चल पड़े। उनके साथ-साथ श्रीगोस्वामी चाचाजी भी थे और पीछे-पीछे चल रहे थे कृष्णाके पिताजी। घर आकर बाबूजी मेरे पास बिछी हुई एक दूसरी चटाईपर ही बैठ गये। मैंने हड़बड़ाकर कहा— अरे बाबूजी! इस चौकीपर बैठिये। यहाँ क्यों बैठ गये?

उन्होंने मेरी बातको अनसुनी करके कहा— पहले मुझे अपना फोड़ा दिखा तू।

इतना कहते-कहते उन्होंने मेरा पाँव झटसे पकड़ लिया। मैं घबड़ा उठी कि क्या यह उचित है कि मेरे पूज्य ही मेरे पैरोंको पकड़े? मैं रुँआसी होकर कहने लगी— यह क्या कर रहे हैं आप? बाबूजी मेरे पाँवको हाथ न लगाइये। यह ठीक नहीं।

वे किसी तरह भी नहीं माने। मेरा अनुरोध व्यर्थ गया। एक हाथसे मेरा पाँव पकड़ा ओर दूसरे हाथसे तलवा दबा-दबाकर देखने लगे। देखते-देखते बाबूजीने कृष्णाके पिताजीसे पूछा— यह फोड़ा इतना अधिक पक गया है कि इसमें चीरा बहुत पहले लग जाना चाहिये था। अबतक क्यों नहीं लगवाया?

कृष्णाके पिताजीने कहा— समय ही नहीं मिलता कि डाक्टरके यहाँ जा सकूँ।

बस, फिर क्या था? इतना सुनते ही बाबूजी उनपर उबल पड़े और बिगड़ते हुए क्षुब्ध वाणीमें बोले— क्या करते हो दिनभर कि समय नहीं मिलता?

कृष्णाके पिताजीने कहा— आजकल 'कल्याण कल्पतरु' के विशेषांकका काम हो रहा है, जो कम नहीं है। दिन भर विशेषांकका प्रूफ देखता हूँ और रातको रासलीला देखता हूँ। फिर जो समय बचता है, उसमें आवश्यक दैनिक कार्य करता हूँ या नींद पूरी करता हूँ।

बाबूजीका क्षोभ बढ़ता ही जा रहा था। यह उत्तर सुनकर बाबूजीने श्रीगोस्वामी चाचाजीसे रोष भरे स्वरमें कहा— विशेषांकका काम तो करना ही है, उसमें बाधा डालना ठीक नहीं, पर आप इसे अपने घरमें रासलीला देखनेके लिये घुसने ही मत दीजियेगा, जबतक यह अगमाको डाक्टरके यहाँ रोज नहीं ले जाये।

इसके बाद कृष्णाके पिताजीकी ओर उन्मुख होकर उसी तेजीके साथ बोले— अभी ही मैं ड्राइवरसे कहकर गाड़ी भेज दे रहा हूँ और इसे ले जाकर डाक्टरको दिखा लाओ।

उनसे कहनेके बाद फिर बड़े स्नेहसे मेरे सिरपर अपना प्यार भरा शीतल हाथ रखकर

उन्होंने कहा— तू चिन्ता मत करना भला। जल्दी ठीक हो जायेगी। भोजनके लिये मैं सावित्रिकी माँसे कह दूँगा, वह भिजवा देगी।

श्रीगोस्वामी चाचाजीसे और कृष्णाके पिताजीसे बाबूजीने जो कहा, उसे सुनकर मेरी हालत विचित्र हो गयी। एक ओर उठनेवाले विचारोंकी आँधीने और दूसरी ओर उमड़ने वाले भावोंकी बाढ़ने मुझे बुरी तरह झकझोर दिया। कृष्णाके पिताजीको रासलीला अत्यन्त प्रिय है और अब वे रासलीला देखने नहीं जायेंगे तो उनके मनपर क्या बितेगी। बाबूजीका वज्र-सदृश-कठोर आदेश तो उनको अस्त-व्यस्त कर देगा। कृष्णाके पिताजीके बारेमें सोच-सोचकर मन बड़ा विकल हो रहा था, पर उससे भी अधिक विह्वल हो रहा था बाबूजीके अनोखे-अद्‌भुत प्यारको देखकर। क्या बाबूजीका प्यार ऐसा असीम है, इतना अनुमानातीत है, जो उन्होंने मुझ साधारण-सी स्त्रीकी चिकित्सा और सँभालके लिये वैसी कठोर आज्ञा देनेमें कोई संकोच नहीं किया? मूढ़मति और मूक अधर मैं आँखें खोले-खोले बाबूजीको देखती रह गयी और मेरे देखते-देखते श्रीगोस्वामी चाचाजीको पारिवारिकतापूर्ण आदेश, उनको आत्मीयतापूर्ण आज्ञा और मुझको ममतापूर्ण आश्वासन देकर वे मेरे घरसे गीतावाटिका चले गये। उनके साथ-साथ चले गये श्रीगोस्वामी चाचाजी और कृष्णाके पिताजी भी।

सब चले गये और मैं अकेली चटाईपर बैठी रही अपने भीतरी झंझावातमें फँसी हुई। मैं विजड़ित-सी चटाईपर चुपचाप बैठी हुई थी। कुछ ही मिनटके बाद कृष्णाके पिताजी लौटकर मेरे पास आये। मैंने देखा कि वे बड़े भाव विभोर हो रहे हैं। मेरे द्वारा जिज्ञासा किये जानेके बाद भी वे कुछ बोल नहीं पाये। उनका कण्ठ अवरुद्ध था। थोड़ी देर बाद जब वे कुछ प्रकृतिस्थ हुए तो बोले— जब बाबूजी आगे बढ़ गये तो श्रीगोस्वामी चाचाजीने मेरे कंधेपर हाथ रखा और बड़े मीठे स्वरमें कहा कि ऐसी अच्छी रासलीला देखनेका अवसर हाथसे खो देना ठीक नहीं है। श्रीभाईजीके आदेशानुसार कृष्णाकी माँकी चिकित्सा और सँभालमें अब तुमको पूरा समय देना ही है, पर जहाँ तक विशेषांकके प्रूफको देखने की बात है, तुम्हारा वह काम मैं कर लिया करूँगा। मैं वे प्रूफ रातको थोड़ा जगकर देख लिया करूँगा, जिससे तुम रासलीलाके सुखसे वंचित न रह सको।

उनसे ये सब बातें सुनकर उनसे ज्यादा विभोर तो मैं हो उठी। बाबूजीकी तरह श्रीगोस्वामी चाचाजीके ऊपर भी 'कल्याण कल्पतरु' के सम्पादनका भार कम नहीं था, बल्कि विशेषांककी तैयारीके समय यह सम्पादनकार्य-भार बहुत ज्यादा बढ़ जाया करता था। उनपर कार्य-भार चाहे जितना हो, वे रासलीलाके इतने अधिक अनुरागी थे कि वे रासके स्वरूपोंको रोज कंधेपर बैठाकर अपने घरपर भोजन करानेके लिये लाते थे और भोजनोपरान्त वैसे ही कंधेपर बैठाकर वापस पहुँचाते थे। इस घनी व्यस्तताके बीच कृष्णाके पिताजीके कार्यका दायित्व स्वीकार करके उन्होंने अपना कार्यभार बहुत ज्यादा बढ़ा लिया। उन दिनों श्रीगोस्वामी चाचाजीके घरपर बिजली नहीं थी। रासलीला हो जानेके बाद मिट्‌टीके तेलकी लालटेन जलाकर रातको वे उन प्रूफोंको देखा करते थे, जो कृष्णाके पिताजीके जिम्मेका काम था। उनके इस नवीन कार्य-भारको देख-देखकर हमलोगोंका मन बड़ा विकल होता था। जिस नवीन दायित्वके स्वीकारको हमलोग उनके लिये कार्यका भार मान रहे थे, वह वस्तुतः था उनके अगाध प्यारका ज्वार, अमाप्य ममताका उभार। ममता मूर्ति मेरे बाबूजीके प्रति सर्वभावेन-सर्वप्रकारेण समर्पित श्रीगोस्वामी

चाचाजीकी ममताकी साकार प्रतिमा ही बन गये थे। बाबूजीके ममतोद्भुत आदेशके उपरान्त कृष्णाके पिताजीने मेरी चिकित्साकी ओर पूरा ध्यान दिया ही, पर श्रीगोस्वामी चाचाजीके ममतोद्भु सहयोगके फलस्वरूप वे रासलीलाके दर्शनका भी सुख ले सके। ■

सौ. श्रीसावित्रीबाई फोगला

[१] सुख-दानकी भावना

जब पूज्य बाबाका काष्ठ-मौन व्रत था, तब उनकी कुटियाके बाड़ेके भीतर केवल हम तीन व्यक्ति ही जा सकते थे, पूज्य बाबूजी, माँ और मैं। बाबाको भिक्षा करवाना है अथवा उनको जल पिलाना है, यह कार्य भी हम तीनोंमें से किसी एक द्वारा होता था। बाबा भिक्षा प्रायः सूर्यास्तके बाद किया करते थे, अतः रातके कुछ बीत जानेपर प्यास लगना स्वाभाविक है। भगतजी माँको बुलाने आया करते थे और माँ श्रीभगतजीके साथ कुटियापर जाया करती थी बाबाको जल पिलानेके लिये। यदि माँ अपनी अस्वस्थताके कारण नहीं जा पाती थी तो मैं जाया करती थी। कभी-कभी तो भगतजी आधी रातके समय बुलानेके लिये आया करते थे और चाहे वर्षा ऋतुमें घोर पानी बरस रहा हो अथवा शीत ऋतुमें घना जाड़ा लग रहा हो, हम दोनोंमें से कोई जल पिलानेके लिये जाता ही था। अपनी अस्वस्थताके बाद भी हमलोग जाया करते थे, जिससे कि पूज्य बाबूजीको जानेका कष्ट न उठाना पड़े। बाबूजीका एक-एक क्षण बड़ा ही मूल्यवान होता था, अतः हम दोनोंका ध्यान सदा यही रहता था कि अत्यधिक व्यस्त बाबूजी कम-से-कम इस कार्यसे तो मुक्त ही रहें।

हमलोग बाबूजीका ध्यान रखें, इससे अधिक वे हमारा ध्यान रखते थे। यदि बाबूजीको कभी पता चल जाता कि मैं और माँ कुछ अस्वस्थ हैं तो वे तुरंत भगतजीके साथ भिक्षा करानेके लिये अथवा पानी पिलानेके लिये कुटियाकी ओर चल देते थे। उनको उठनेमें देर नहीं लगती थी। वे चाहे आवश्यक कार्यमें व्यस्त हों अथवा स्वयं ही शरीरसे अस्वस्थ हों, अपनी धोती सँभालते हुए वे भगतजीके साथ चल ही पड़ते थे। यह केवल एक या दो बारकी बात नहीं, अपितु ऐसा प्रायः होता रहता था। सचमुच उन्होंने जितना स्नेह माँको दिया और जितना वात्सल्य मुझको दिया उसकी कोई सीमा नहीं। मुझे अथवा माँको सुख देनेकी भावनासे प्रेरित होकर उन्होंने जो-जो और जितना-जितना किया, वस्तुतः उसका अनुमान भी कल्पनासे परे है।

[२] सँभालकी तत्परता

बात उस समयकी है, जब मेरी आयु लगभग दस वर्षकी रही होगी। तब गीतावाटिकामें बिजली नहीं थी। वाटिकाके भीतर न इतने मकान थे और वाटिकाके बाहर न कोई बस्ती थी। था चारों ओर जंगल-ही-जंगल। घरमें नौकर-चाकर भी नहीं थे। सारा काम, अपने हाथसे करना होता था। जिसे आजकल पावन कक्ष कहते हैं, यह कमरा भी तब नहीं बना था। इसका निर्माण तो बहुत वर्षोंके बाद हुआ। तब बाबूजी उस कमरेमें रहते थे, जो भिक्षाधरके ऊपर है। उसी कमरेमें रहते हुए वे 'कल्याण' पत्रिकाके सम्पादनका कार्य किया करते थे।

एक रात बहुत जोरसे वर्षा आयी। पानी मूसलाधार बरस रहा था। बरामदा तो पानीसे भर ही

गया, बरसातका पानी कमरेमें भी आने लग गया। ऐसा लगता है कि छतपरके कूड़े-कचरेसे नालीका मुँह बन्द हो गया और निकास बन्द हो जानेसे बढ़ता हुआ पानी कमरेमें फैलने लगा। कमरेमें बाबूजीकी बहुत-सी फाइलें नीचे भूमिपर पड़ी हुई थीं। और भी कई कागज थे। मैं, माँ और बाबूजी, हम तीनों ही कागजों-फाइलोंको उठा-उठाकर ऊँचे रखने लग गये। जमीनपर बिछे हुए गद्देको जल्दी-जल्दी समेटकर ऊपर रखा गया। बढ़ते हुए पानीसे बचावके लिये हम तीनों लोग तत्परता पूर्वक उठा-उठाकरके सामान ऊपर रख रहे थे, तभी बाबूजीने कहा— सावित्री ! तुम चीजोंको, कागजोंको सँभालकर रखना। मैं अभी आता हूँ।

मैंने पूछा— इस तेज बरसातमें आप कहाँ जा रहे हैं ?

बाबूजीने कोई कारण तो बतलाया नहीं, केवल 'अभी आता हूँ', 'अभी आता हूँ', यह कहते-कहते लालटेन उठायी और चल दिये।

बादमें तो सब पता चल ही गया। बाबूजी जा रहे थे बगीचेके पिछले भागमें इमलीके विशाल वृक्षोंकी ओर, जहाँ बाबा फूसकी कुटियामें रहते थे। उन दिनों बगीचेके पिछले भागमें बड़ी ऊँची-ऊँची घास थी, इतनी ऊँची कि उसमें कोई आदमी छिप जाय। घासके उस जंगलमें मोटे-मोटे लम्बे-लम्बे साँप भी बहुत थे, कभी पगडंडीपर पड़े हुए, कभी वृक्षोंसे लटकते हुए। ऐसा होकर भी बाबूजी लालटेन लेकर बाबाके पास गये। वहाँ जाकर देखा कि बाबा अपनी कुटियामें भीग रहे हैं। इसी परिस्थितिका अनुमान करके ही तो बाबूजी लालटेन लेकर कमरेसे तुरंत चल पड़े थे। अपने अनुमानको प्रत्यक्ष देखकर बाबूजीका हृदय स्नेहार्द्र हो उठा कि बाबा कितना कष्ट पा रहे हैं। पूज्य बाबूजीने तत्काल बाबाका हाथ पकड़ा और उनको उठाकर अपने साथ ले आये। ऐसी थी पूज्य बाबूजीके मनमें ममत्वकी भावना और ऐसी थी उनके मनमें सँभालकी तत्परता। ■

सौ. श्रीराधादेवी भालोटिया

गुणदर्शन एवं प्रशंसन

पूज्य नानाजीकी सहज चेष्टा है, उनका सहज स्वभाव है सबमें गुणदर्शन करनेका। गीताभवन (स्वर्गाश्रम, ऋषिकेश) में प्रति पक्ष सफाई सत्संगी भाई-बहिन स्वयं हाथसे करते हैं। नानाजी भी उस दिन हाथमें झाड़ू लिये दिखाई पड़ रहे हैं। परस्परमें बात होने लगी— अरे, बाबूजी सफाई कर रहे हैं। चलो, सब चलें।

सब दत्तचित्तसे जुट जाते हैं। जोरोंसे गन्दगीका बहिष्कार हो रहा है। सब जगह स्वच्छ हो गयी है। नानाजी स्नानादिसे निवृत्त हो गये हैं। अब चल रहा है उनका प्रशंसाका कार्यक्रम। आज तो अमुक व्यक्तिने बड़ी मेहनतसे सफाई की, अमुकने गन्दा नाला साफ कर दिया, अमुक तो शौचालयतक धो आया।

प्रशंसा मीठी लगती है, सब बाहर खड़े सुन रहे हैं, प्रसन्न हो रहे हैं और मन-ही-मन निश्चय-सा कर रहे हैं कि अगली बार और जोरसे सफाई करूँगा। जीवनमें कर्मठता आये, यही नानाजीको अभीष्ट है। उनकी प्रशंसासे स्वयमेव यह हो रहा है। यह है नानाजीकी अनुपम शैली

गुण बढ़ानेकी।

*   *   *   *   *

नानाजीका घर सबका घर है। विश्वके कोने-कोनेसे विदेशी, देशी, अँग्रेज, नीग्रो, काले, गोरे, सब उनके घरमें आते हैं, सब समुचित आदर पाते हैं। वे कैसे किसीका अपमान कर सकते हैं? चौका उठ गया है। अचानक बीस आदमी आ गये हैं। उन्होंने प्रातःकालसे कुछ खाया नहीं है, अतः सायं भोजन तैयार होनेतक प्रतीक्षा नहीं कर सकते हैं। इसी समय संध्या चार बजे उनके लिये पूड़ी-सागकी आवश्यकता है। रसोईघरका महाराज अभी दस मिनट पहले चौकेसे निकल कर गया है। तुरन्त कैसे बुलायें उसको?

अब अन्नपूर्णा स्वरूपा नानीजी स्वयं आटा लेकर बैठती हैं— लाओ, मिलकर बना लें। आनेवाले अतिथिका सत्कार तो होना ही चाहिये।

नानीको लगे देखकर घरकी अन्य स्त्रियाँ भी जुट गयीं। भोजन तैयार है। प्रातःकालसे भूखे अतिथियोंने छककर खाया। मन-ही-मन शुभकामना की— ऐसे सद्‌गृहस्थकी गृहस्थी सदा फले-फूले।

नानाजीको पता लगा कि आज सबने इस प्रकारसे अतिथिसेवा की। वे प्रसन्न हो गये। अघा नहीं रहे हैं प्रशंसा करते-करते। उल्लसित वाणीमें वे कह रहे हैं— देखो! कितना काम किया इन लोगोंने! इस गर्मीमें कितना परिश्रम किया इन्होंने! इन्हींके परिश्रमके परिणाम स्वरूप ही तो विश्वरूप प्रभुकी यह अर्चना सुरुचि पूर्ण सम्पन्न हो सकी।

काम करनेवाले गद्‌गद हो उठते हैं— इतना सम्मान! अन्य तो कोई भी दे नहीं सकता।

*   *   *   *   *

नानाजी स्वयं अच्छे-से-अच्छे डाक्टर, वैद्यराज या होमियोपैथसे कम नहीं हैं। उनकी छोटी-मोटी डिस्पेंसरी और रसायनशाला उनके साथ ही चलती है। वे सबको दवा देते हैं, ठीक करते हैं, पर यदि अन्य कोई जरा-सी भी सेवा किसीकी कर देता है तो अर्थ-व्यय सारा स्वयं वहन करनेके उपरान्त भी तनिक-सा सहयोग करनेवालेको सच्चे सेवकका खिताब दे डालते हैं— बेचारा कितनी सेवा करता है? जरा-सा भी आलस्य नहीं। एक बार, दो बार, पाँच बार, जितनी बार आवश्यकता होती है, डाक्टरको बुला देता है। दवा ला देता है, बड़ा ऋणी हूँ इसका।

नानाजीके मुखके उद्‌गार उल्लास-विभोर बना देते हैं सेवा करनेवालेको। कहीं कोई कृत्रिमता हो इस कथनमें, सो भी नहीं। स्वभावसे ही गुण दीखते हैं नानाजीको और प्रशंसा कर देते हैं वे।

*   *   *   *   *

वस्तुओंको सुव्यवस्थित रखना नानाजीका स्वभाव है। दैनिक उपयोगकी प्रत्येक वस्तु वे बड़ी सँभाल कर रखते हैं। दूसरा कोई भी इस पद्धतिको अपनाता है तो वे बड़ी प्रशंसा करते हैं उसकी। अँधेरा हो रहा है, बत्ती फ्यूज हो गयी है। किसीको कोई दवाकी आवश्यकता है और

अँधेरेमें उठा कर ले आता है। उसकी कुशलता नानाजी सबको बताते और प्रसन्न होते थकते नहीं।

* * * * *

राधाष्टमीका उत्सव है। यह राधा-परिवारकी भावनाको लेकर, नानाजी और बाबाजीकी चलायी हुई परम्परानुसार एक पारिवारिक उत्सवके रूपमें मनाया जाता है। इसमें सम्मिलित होनेवाले प्रत्येक व्यक्तिका यह अपना उत्सव है। उसकी अपनी उपासनाका अंग है, फिर उसमें जो जितना अधिक सहयोग करे, उसका अपना कर्तव्य है, अपनी निधि है। पर नहीं, नानाजीकी पैनी दृष्टि गुण देखनेमें चूक नहीं सकती। जो कुछ भी नहीं कर रहे हैं, उनके प्रति असन्तोष व्यक्त करनेकी तो कहीं स्फुरणा ही नहीं— वे बिचारे साधन करते हैं। उन्हें समय ही नहीं कि अन्य कुछ सहयोग दे सकें। जो कार्यकर्ता हैं, उन्होंने रात दिन सेवा-कार्यको सँभाला। उन्हें मैं क्या कहूँ? सब अपने हैं, उसी स्नेहसे काम करते हैं।

* * * * *

उत्सवमें आनेवाले ठहरनेवाले व्यक्तियोंको कुछ असुविधा तो स्थानाभावके कारण होती ही है और कष्टका वरण करनेमें मानवको कष्ट होता ही है। व्यवस्था करनेवाले कुछ तो परिस्थितिवशात् और कुछ अपने अहंकारवशात् उद्विग्न हो जाते है और क्रोध आ जाता है, पर नानाजीकी गुण-ग्राहकता वहाँ भी गुणदर्शन कर रही है— अपने घरोंमें तो बिचारे सभी अपनी-अपनी सामर्थ्यके अनुसार बड़े आरामसे रहते हैं, फिर यहाँ कष्ट सह करके पैसा खर्च करके वे आते हैं, उत्सवमें भाग लेते हैं। बड़ी ही कृपा है उनकी तो हम सबपर।

आनेवाला अपना कष्ट भूल जाता है, मनका क्षोभ भी स्वतः दूर हो जाता है नानाजीकी इस स्नेहभरी सराहनासे।

* * * * *

दूर-दूरसे लोग आ रहे हैं नानाजीसे मिलने, पर नानाजी अपने भावराज्यमें लीन हैं। आनेवाला आता है, बैठ कर लौट जाता है। कमरेके किवाड़ खुले, नानाजीको पता लगा, उन्हें बड़ा विचार हो रहा है। प्रभु प्रेरित वे फिर आ पहुँचे। अब तो नानाजीका मन-भाया हो गया। झुककर अभिवादन करते हैं, क्षमा माँगते हैं— बड़ा कष्ट हुआ महाराज आपको! मैं तो ऐसा ही हूँ। दिमाग खराब हो जाता है मेरा तो। आप इतनी दूरसे आये, इतनी प्रतीक्षा करनी पड़ी आपको। क्षमा करें।

* * * * *

'भाईजी! आपके पास जो रात दिन रहते हैं, उनका जीवन धन्य है। हम जैसोंको तो सालोंमें कभी एक बार दर्शन हो पाते हैं'— सरल श्रद्धालु महिलाके मुखके ये उद्‌गार सुन रहे हैं नानाजी, पर उसका समर्थन नहीं है। हाथ जोड़कर वे कह उठते हैं— नहीं, नहीं, मेरे क्या दर्शन हैं? मैं किस लायक हूँ? यह तो आप लोगोंकी कृपा है, स्नेह है, जो मुझ सरीखेको भी अपना रखा है।

इतना आदर देते हैं। *'तृणादपि सुनीचेन'* का उदाहरण तो है ही, इसके अतिरिक्त है बड़े

दुर्लभ सद्गुणका परिचायक, दूसरेमें भलाई देखना, गुण देखना।

* * * * *

शत्रु और मित्र तो जगतमें होते ही हैं। अजातशत्रु मर्यादा पुरुषोत्तम राम और सर्वसुहृद लीला पुरुषोत्तम कृष्णके भी निन्दक और विरोधी उत्पन्न हो ही गये थे। हमारे नानाजी सरीखे आदर्श पुरुषमें भी दोष देखनेवाले अहंकारी उनकी निन्दा करते हैं। इससे नानाजीपर सहज ही श्रद्धा रखनेवालोंको कष्ट होता है। मन-ही-मन एक विद्रोह-सा उत्पन्न हो जाता है उन निन्दकोंके प्रति। पर नानाजीपर असर नहीं। वे श्रद्धालु-जनोंसे कहते हैं– थे लोग बावला हो। मूर्ख हो। मेरी तो बड़ी श्रद्धा है और बाँको बड़ो स्नेह है मेर ऊपर तो।

श्रद्धालुओंके अन्तरका विरोध वहीं घुटकर रह जाता है। तनिक-सा प्रश्रय नहीं मिल पाता उसे नानाजी द्वारा।

* * * * *

अपने पिता अथवा अग्रजको विवाहिता हिन्दू रमणी प्रणाम न कर सकती हो, चरण स्पर्श न कर सकती हो, कहीं हिन्दू शास्त्रमें ऐसा उल्लेख नहीं है। फिर नानाजी जैसा सच्चा पिता, सच्चा भाई दूसरा होगा ही कौन ? फिर भी नानाजी इसे प्रश्रय नहीं देते, इसके विरोधक ही हैं। एक बार कलकत्तेमें माता-बहिनोंने अत्यन्त श्रद्धा और अन्तरका पवित्रतम स्नेह लेकर नानाजीके चरणोंका स्पर्श कर लिया। छिद्रान्वेषी तो ढूढते ही रहते हैं कहीं छिद्र मिले। एक सज्जन, सुहृद, परामर्शदाताने नानाजीको सलाह दी– आप इस प्रकार प्रणाम करवाते हैं, उचित नहीं।

बड़े स्नेहसे बड़ा आदर देकर नानाजीने अपना दोष स्वीकार किया– क्या बताऊँ ? उचित तो नहीं, पर मुझे भी आत्म-पूजा, आत्म-सम्मानकी बड़ी भूख है, सचमुच ही यह मेरा पतन है। सलाहकार प्रसन्न हैं कि नानाजीने उसकी बातको समझ तो लिया। माने-न-माने, अपना दोष तो स्वीकार किया ही। कम-से-कम ध्यानमें तो आया। और नानाजी तो गुणदर्शनमें बेजोड़ हैं ही। बार-बार हर मिलनेवालेके सामने चर्चा करते हैं– उन्होंने कितनी सुन्दर बात कही ? कितनी अच्छी सलाह दी मुझे ?

'चरण स्पर्श सर्वथा न करें, अन्यथा उपवास करूँगा मैं'– नानाजीकी गम्भीर घोषणासे आत्यन्तिक कष्ट हुआ सबको। सबके मनमें एक दर्द है– क्या हम इतने अभागे हैं, जो अपने बाबूजीके, अपने भाईजीके चरण नहीं छू सकते ?

पर उसकी परवाह नहीं। नानाजी तो उस अज्ञानान्धकारमें समाविष्ट रहनेवाले सुहृदके परामर्शका आदर करेंगे। वे बार-बार कहते हैं– *'निंदक नियरे राखिए आँगन कुटी छवाय'।*

* * * * *

नौकर काम कर रहा है। एकके बाद दूसरा, दूसरेके बाद तीसरा आदेश मिलता जा रहा है उसे। हम उसे पैसा देते हैं और काम करना ही पड़ेगा उसे, इसी अहंकारका पोषण हो रहा है उसे आज्ञा देकर। नानाजी देख रहे हैं– बेचारा हमारे जैसा आदमी है। कितना कठोर परिश्रम कर

रहा है वह ? कहीं जरा भी आलस्य नहीं, रोष नहीं।

हम लोग अपना अधिकार समझकर उसे उसका कर्तव्य सिखानेका प्रयत्न कर रहे हैं, पर वह असमर्थ है और नानाजीका स्नेहभरा दृष्टिपात उसे कर्तव्य पथपर डटे रहनेका पाठ पढ़ा देता है। उनका उसमें गुणदर्शन ऐसे सद्‌गुणोंको मूर्त कर देता है, जिन्हें बेचारा वह स्वयं नहीं जानता। पर वह भी अपने दयालु मालिकके प्रति कृतज्ञ अवश्य है।

* * * * *

मेहतरानी सफाई कर रही है। लोग अपने मनमें एक हेय उपेक्षाका भाव ही रख पाते हैं उसके प्रति। लेकिन नानाजीका निर्माण इन अहंता-ममताके तत्त्वोंसे नहीं, श्रीकृष्ण-तत्त्वसे हुआ है।

मेहतरानी माँ है, जगज्जननी है। माँ केवल अपने बच्चेका मल साफ करती है और यह प्राणिमात्रका मल धोती है। शिशुके तनिक बड़े हो जानेपर माँको आपत्ति हो सकती है, पर उसे कभी कोई अनिच्छा नहीं। अब किसके मातृत्वका धरातल ऊँचा है ? माँ मात्रका अथवा इस विशाल हृदया जगज्जननीका ?

तार्किक बुद्धि भी इसका उत्तर नही दे पाती है, विरोध नहीं कर पाती।

* * * * *

भावराज्यकी दृष्टिसे नानाजी सर्वोपरि हैं। उनसा साधक, उनसा सिद्ध, उनसा संत, उनसा *'मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः'* दूसरा नहीं। पर उनमें आडम्बर अथवा कृत्रिमताकी गन्ध भी नहीं। हृदय-धनको गोपनीय रखना ही अभिप्रेत है उनको। अब, जब अपना वश नहीं रहा, बात बेकाबू हो गयी, तब उसका नया रास्ता निकाल लिया गुप्तताके प्रेमी नानाजीने। हर आनेवाला घरका-बाहरका जानता है नानाजी भाव-समाधिमें हैं, पर उसका नया नामकरण किया है, मान-सम्मानको परम त्याज्य समझनेवाले नानाजीने 'माथा खराब होना'। अर्थात् होश-हवाश ठीक नहीं रहे। दिमाग असंतुलित हो गया है। पहले ठीक था, अब जो हो रहा है, वह ठीक नहीं, जब कि यथार्थ यही है।

* * * * *

यों तो उनके लिये जगतमें रचे-पचे रहना अथवा भाव समाधिमें रहना, है समान ही वस्तु। श्रीराधा-माधव और नानाजी, ये दो वस्तु नहीं। जहाँ नानाजी हैं, वहाँ राधा-माधव बाध्य हैं रहनेको और जहाँ यह युगल है, नानाजीकी उपस्थिति वहीं हैं, इसमें संशयको स्थान नहीं। ऐसे नानाजी अपने मुखसे दूसरोंके बारेमें कहते हैं– भैया ! अमुक व्यक्ति बड़ी साधना करता है। नामजप करता है। निरन्तर भगवच्चिन्तनका प्रयास करता है। उसे अनुभव भी होते हैं। अपनेसे तो वही अच्छा है।

प्रभु बाध्य हो जाते हैं इस सराहनासे। वह अधिकारी था या अनधिकारी, अब यह प्रश्न नहीं रहा। भगवान भक्तके वशमें हैं। लीलाविहारी नटवर हों या चतुर्भुज नारायण, उन्हें उसे अपनाना

ही पड़ेगा। यह है नानाजीके गुणदर्शनका निरूपम परिणाम। अब इसे क्या उपमा दी जा सकती है? ■

सौ. श्रीपुष्पादेवी भरतिया

विलक्षण था उनका प्यार

नानाजीकी छत्रछायामें हम बच्चे बढ़ते रहे। उनका सहज स्नेह हमें अबाध रूपसे मिलता रहा। हमलोगोंकी स्वच्छन्द क्रीड़ाके उपयुक्त सभी वस्तुएँ प्रस्तुत रहतीं। जब भी कुछ माँग होती, हमारे नानाजी अविलम्ब उसे पूरा कर देते। जीवनमें कभी भी, किसी भी प्रकारके अभावका अनुभव नहीं किया मैंने उनके जीवनकालमें। बचपनके सलोने दिन कब, कैसे बीत गये, हम जान भी नहीं पाये।

मैं करीब नौ वर्षकी थी, तब नानाजी सारे परिवारके साथ रतनगढ़ गये थे। वहाँ बैठकमें वे सम्पादनका कार्य किया करते थे। सर्दीके दिनोंमें वे कम्बल या मोटी चादर ओढ़कर बैठा करते थे। नानाजीके सामीप्य और स्पर्शसे मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हुआ करती थी। उतनी देरके लिये मैं अपनेको बहुत ही गौरवशालिनी अनुभव करती। बस, इसीलिये मैं ठिठुरती ठंडमें बिना कुछ गर्म कपड़े पहने चली जाती बैठकमें। नानाजीका ध्यान सहज ही आकृष्ट होता मेरी तरफ और वे अपनी दुलारभरी भाषामें कहते— सी लाग जासी छोरी! तूँ सूटर भी कोनी पैर राखी। आ मेरी कम्बल म बड़ जा (ठण्ड लग जायेगी लड़की! तूने स्वेटर नहीं पहन रखा है। आ, मेरी कम्बल में घुस जा)।

वे कम्बलसे दोनों हाथ निकालकर मुझे अपनी ओढ़ी कम्बलसे आवृत कर लेते। मुझे अभिवाञ्छितकी प्राप्ति हो जाती और मैं खिल उठती। छोटे-बड़े मेरे भाई-बहिन ललचायी नजरोंसे देखते रह जाते और मैं नानाजीके स्नेहपर अपना एकाधिपत्य जमा, चैनकी नींद सो जाती।

यों तो नानाजी हम सभी बच्चोंको बहुत अधिक प्यार करते थे, परंतु उनका स्नेह मेरे प्रति अपेक्षाकृत अधिक रहता। वे कहा भी करते थे— मुझे तुम चारों बच्चे बहुत ही प्रिय हो, परंतु तुम्हारे प्रति मेरा बहुत मोह है।

नानाजीकी अयाचित अनुकम्पा मुझपर विशेष रूपसे रहती और मैं अनायास अतिशय सुगमतासे प्राप्त उनके अपरिसीम प्यारसे ओत-प्रोत अपने सौभाग्यपर स्वतः ही मोहित रहती। समय बीतता गया और समयके साथ-साथ मैं भी बढ़ती गयी। अब नानाजीको मेरी शादी करनी थी और आखिर वह दिन आ ही गया, जो हर लड़कीके जीवनमें एक दिन आता ही है। शादी हो गयी मेरी। मुझे बिदा करना था। हृदयमें उल्लास और आँखोंमें आँसू लिये नानाजी मेरे पास आये। मैं स्थिर पलकोंसे देख रही थी अपने नानाजीके स्नेहपूरित छलछलाये नेत्रयुगलको।

अब मेरा धैर्य भी बाँध तोड़ चुका था। मैं नानाजीके गलेमें हाथ डालकर फफक-फफककर रोने लगी। नानाजी बहुत कुछ कहना-समझाना चाहते थे मुझे, पर उमड़े हुए स्नेहको भेदकर वाणी कण्ठसे बाहर आ जो नहीं पाती थी। कबतक मैं रोती रही, मुझे भान नहीं। हाँ, किसीने जबर्दस्ती मुझे नानाजीसे अलग किया। नानाजीने बहुत कठिनाईसे अपनेको सँभाला तथा अश्रुपूरित कण्ठसे मेरे कर्तव्योंका बोध कराते हुए मुझे जल्दी ही बुलानेकी सान्त्वना दी और मुझे बिदा कर दिया गया।

मेरी शादी चार मार्चको थी और मेरी एम.ए. की फाइनल परीक्षा मार्चके अन्तिम सप्ताहमें। मैं १३-१४ मार्चतक वापस आयी। पढ़ाई कुछ भी नहीं हुई थी। सालभरका और फिर एम.ए.का कोर्स पन्द्रह दिनमें तैयार करना असम्भव था। मैं नानाजीके पास गयी। मैंने कहा— नानाजी! मेरी तैयारी बिल्कुल नहीं हुई है। मैं परीक्षा नहीं दूँगी। हाँ, अगर आप चाहते हैं कि मैं परीक्षा दूँ तो आप अपने मुँहसे कह दीजिये, मेरी सेकेंड डिविजन आ जायेगी।

नानाजी पहले तो आनाकानी करते रहे, पर मेरे बालहठके सामने उन्हें झुकना ही पड़ा। आखिर उन्होंने कह ही दिया— परीक्षा तो दो, सेकेंड डिविजन आ जायेगी।

जो सत्यसंकल्प है, उनके दिव्य मानसतलमें किसी भी संकल्पका उन्मेष होते ही वह तत्क्षण संघटित हो जाता है। उन्होंने जब अपनी वाणीसे कह दिया, तब मेरे लिये संशयका स्थान ही कहाँ रह गया था! मैंने पन्द्रह दिन पढ़कर परीक्षा दी और गुड सेकेंड क्लासके मार्क्स थे मेरे। नानाजी सर्वसमर्थ थे, सब कुछ करनेकी-देनेकी सामर्थ्य थी उनमें। यह नितान्त सत्य है। इसका प्रत्यक्ष अनुभव मुझे जीवनमें कई बार हुआ है। अनुभव प्रचारकी वस्तु नहीं, अतः उनको गोपनीय रखना ही उचित है।

जितने दिन मैं ससुराल रही, नानाजीका पत्र प्रायः प्रत्येक दिन ही मिलता। किसी दिन नहीं पहुँचता तो दूसरे दिन दो पत्र साथ-साथ मिलते। पत्र देखते ही मैं आनन्द-विभोर हो उठती। गोल-गोल, मोतीकी लड़ी-सी सुन्दर-सुघड़, स्नेहपूरित अक्षरावलीको देखते ही मैं खुशीसे मत्त हो उठती। लिफाफेके ऊपर भी 'बेटी' लिखे बिना नानाजीका मन नहीं मानता। सदा 'बेटी पुष्पा भरतिया' करके ही वे पता लिखते अपने हाथोंसे। आज भी मेरे जीवनकी अमूल्य निधिके रूपमें उनके हाथोंसे मुझे लिखे गये अनेकों पत्र हैं। जब भी उन्हें पढ़ती हूँ, लगता है नानाजी मेरे सामने बैठे हैं और बड़े ही प्यारसे, लाड़भरी मनुहारसे मुझे नानाविधि शुभ प्रेरणा दे रहे हैं।

किसी भी कारणवश मुझे पत्र देनेमें यदि एक दिनका भी विलम्ब हो जाता तो नानाजी चिन्तित हो उठते। मेरे पत्रके किसी भी शब्दसे 'नैराश्य' या 'उदासी' का क्षीण-सा भी आभास उन्हें मिलता तो वे आकुल हो उठते। प्रातः नानाजीके भोजन करनेका समय होता, प्रायः उसी समय डाक आया करती थी। कार्यभारकी अधिकताके कारण नानाजी भोजन करते समय भी आयी हुई डाक एवं पत्रोंको देखा करते थे। नानी भोजन कराने आती थी। अगर मेरा पत्र होता तो नानाजी नानीको पढ़कर सुना देते थे। पत्र पढ़ते-पढ़ते उनकी विचित्र-सी दशा हो जाती, आँखोंसे झर-झर आँसू गिरने लगते, कण्ठ अवरुद्ध हो जाता उनका। नानीका भी असीम स्नेह

है मेरे प्रति, उसका भी कलेजा भर आता। स्थितिके गाम्भीर्यको कम करनेके हेतु नानी व्यंग्यका पुट देती-सी कहती— पैली थे रो ल्यो, फेर बाँचिओ (पहले आप रो लें, फिर पढ़ियेगा)। बेरो कोनी जी, कित्तो मोह है थारो उँ छोरी मँ (पता नहीं कितना मोह है आपका उस लड़कीमें)।

व्यंग्ययुक्त प्रेमिल वाणी सुनकर नानाजी अनायास ही हँस पड़ते और फिर बातोंका प्रवाह बदल जाता। मैं जब गोरखपुर आती, तब नानी या स्वयं नानाजीके द्वारा मुझे इन सब बातोंकी सूचना मिलती। जब मैं यहाँ रहती, नानाजी चाहते कि मैं उनके पास जाऊँ, बैठूँ, पर इन दिनोंमें प्रायः नानाजी बाह्यज्ञान भूलकर भावराज्यमें खोये रहते थे, प्रायः नानाजी कमरा बन्द रखने लगे थे। इस कारण कई बार कई-कई दिनोंतक यहाँ रहते हुए भी मुझे उनके पास बैठनेका सौभाग्य नहीं प्राप्त हो पाता था। कई दिनों बाद देखनेपर नानाजी उलाहना देते, न आनेका कारण पूछते। मैं कहती— मैं तो आयी थी, पर आपका दरवाजा बन्द था, नानाजी!

वे कहते— दरवाजा बन्द था, पर तुम्हारे लिये थोड़े बन्द था तुम खटखटा लेती, खुलवा लेती।

कई बार उन्हें मेरी आवाजसे या आहटसे यह पता चल जाता कि मैं ऊपर आयी हूँ तो कितने भी आवश्यक कार्यमें व्यस्त क्यों न हों, उठकर तुरन्त दरवाजा खोल मुझे अन्दर बुला लेते एवं अपने सहज स्नेहसे मेरे अणु-अणुको सिक्त कर देते।

सुखके दिनोंकी रफ्तार इतनी तेज होती है कि कब आये, कब चले गये, पता भी नहीं चला। नानाजीकी दृष्टिमें अब पट-परिवर्तन करने का समय आ चुका था। नानाजी सर्वज्ञ थे। वे जानते थे, जाना है, पर जानेसे पहले किसी-न-किसी रूपमें मेरे मलिन शरीरद्वारा उनकी सेवा हो जाये, यह उनकी हार्दिक अभिलाषा हो गयी थी। इसके अन्तरालमें भी असीम, अगाध स्नेहका समुद्र लहरा रहा था उनका मेरे प्रति। उनकी सेवाका उपकरण बन मैं कृतार्थ हो जाऊँ, यह स्नेह-भावना, मंगल-भावना निहित थी उनकी इस अभिलाषामें।

नानाजीके शरीरमें भीषण दाह था। हाथोंपर और सिरपर ठंडे हाथोंका स्पर्श अच्छा लगता था उन्हें। सभी चाहते कि उनकी सेवाका सौभाग्य उन्हें भी प्राप्त हो। एक सज्जन बर्फसे स्पृष्ट हाथ लगा रहे थे, मैं पासमें खड़ी थी। नानाजीकी मुख-मुद्रासे मुझे यह आभास हुआ कि उन्हें इस रीतिसे हाथ लगाना विशेष रुचिकर नहीं लग रहा है। मैंने उनको दूसरी रीतिसे हाथ रखनेको कहा। बस, अब तो नानाजीको बोलनेका अवसर मिल गया। स्नेहभरी खीझसे बोले— खड़ी-खड़ी अकल बताव ह, यो तो कोनी की आप ही कर देव (खड़ी-खड़ी सिखा रही है, यह तो नहीं कि खुद ही कर दे)।

इस उक्तिका लक्ष्य क्या है, यह समझते उन सज्जनको देर नहीं लगी। वे हट गये। मैं उनकी जगह बैठकर उनके सुधापूरित आदेशका पालन करने लगी। आखिरी दिनोंमें नानाजीको प्यास लगती, पर उनके गलेसे पानी नहीं उतरता था। उनको ड्रापरसे बूँद-बूँद करके पानी दिया जाता था। कई लोगोंने चेष्टा की पानी पिलानेकी, पर नानाजी सदैव मुझे ही पिलानेको कहते। कारण विशेषसे यदि मुझे बाहर आ जाना पड़ता तो मुझे खोजकर बुलवाया जाता। ऐसा विलक्षण था उनका प्यार मेरे प्रति।

नानाजीने स्वयं मुझे अपने पत्रमें लिखा था— *तुम जहाँ भी रहो, मेरा स्नेह तुम्हारी सम्पत्ति*

है, मेरा शरीर रहे या न रहे, तुम जहाँ भी रहोगी, तुम्हे वह अबाध रूपसे मिलता रहेगा। ■

श्रीदिलीपकुमारजी भरतिया

जीवनदानी नानाजी

मैंने अपनी कालेजकी शिक्षा १९६६ जूनमें समाप्त की। बम्बई विश्वविद्यालयसे एम.कॉम.की डिग्री प्राप्त करनेके पश्चात् परिवारवालोंकी यह स्वाभाविक रुचि रही कि मेरा विवाह हो जाय। भाग्यसे मेरा विवाह श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी दौहित्री पुष्पादेवीके साथ सम्पन्न हुआ और मुझे विलक्षण नानाजी प्राप्त हुए।

विवाहके एक साल बादसे अर्थात् १९६८ से मेरा स्वास्थ्य खराब रहने लगा। दिन-पर-दिन शरीर अस्वस्थ रहने लगा और पेटकी तकलीफ बढ़ने लगी। एक वर्ष तक गिरिडीह एवं कलकत्तामें तरह-तरहके इलाज हुए, पर तनिक भी लाभ नहीं हुआ। १९६९ के जनवरी मासमें पूज्य नानाजीने मेरे परिवारवालोंसे विनम्र आग्रह करके मुझे गोरखपुर इलाज करवानेके लिये बुलाया। मैं यहाँ पाँच या छः तारीख तक पहुँचा, उन दिनों वे कहा करते थे— मेरे हृदयमें कोई भी संकल्प-विकल्प नहीं उठता, परंतु मैं आपको नीरोग देखना चाहता हूँ।

उनको भावी घटनाओंका पूर्ण ज्ञान था। वे जानते थे कि मेरा आगेका समय खराब है और शायद पूरे पेटका ऑपरेशन करना होगा, पर वे अपने भविष्यके ज्ञानको प्रकट करना नहीं चाहते थे। डाक्टरोंकी सलाहके अनुसार पूज्य नानाजीको केवल 'अपेण्डिक्स' के ऑपरेशनकी बात जँची। २५ जनवरीको ऑपरेशन हुआ। ऑपरेशन थियेटरमें मुझे ले जाते वक्त उन्होंने सर्जन महोदयसे कहा— आप केवल अपेण्डिक्सका ऑपरेशन कीजियेगा, पूरा पेट मत खोलियेगा।

भावी सत्यके अन्तरालमें वे जानते थे कि पूरा पेट खोला जायेगा। सर्जन महोदयने उस समय उन्हें कहा— पेट खोलना कोई बच्चोंका खेल नहीं है। अगर अपेण्डिक्स देखनेसे रोगका निदान ठीक नहीं हो सका तो पूरा पेट खोलकर इनकी बीमारीका पता लगाऊँगा।

अस्तु, पूरे पेटका बड़ा ऑपरेशन हुआ। पेटमें 'अल्सर' मिला। पेटकी आतोंका काफी हिस्सा निकाल दिया गया। ऑपरेशन सफल हुआ, पर असह्य पीड़ा थी। सारा शरीर जल रहा था। इस असह्य वेदनामें भी जब-जब पूज्य नानाजी पास आकर बैठ जाते, शान्तिका अनुभव होता। उनके आते ही मनको बड़ा बल मिलता। वे आश्वासन देते— आप ठीक हो जायेंगे, भगवानको नित्य-निरन्तर याद रखिये।

चार दिनतक असह्य पीड़ा और वेदना रही, पाँचवें दिनसे कुछ राहत मिलने लगी। मेरी हालतमें कुछ सुधार और लाभ हुआ कि अचानक पेटमें पुनः भीषण पीड़ा आरम्भ हो गयी। सब डाक्टर महानुभाव घबरा गये। स्थिति चिन्तनीय होने लगी। पूज्य नानाजी सब कुछ व्यवस्था करते हुए भी अविचल थे। मुझे अच्छी प्रकारसे स्मरण है जब मैंने पूज्य नानाजीको प्रथम

ऑपरेशनके बाद कहा कि मुझे बड़ा कष्ट है, तब उन्होंने बड़ी ही गम्भीर मुद्रामें उत्तर दिया था कि कष्ट तो और भी आगे है। अर्थात् दूसरे ऑपरेशनकी जानकारी उन्हें थी। पेटमें असह्य दर्द तो था ही, उल्टियाँ होने लगीं। नानाजी बार-बार कमरेमें आते, सिरपर और मुखपर हाथ फेरते और भगवन्नाम– *'ॐ अच्युताय नमः, ॐ अनन्ताय नमः, ॐ गोविन्दाय नमः'* का उच्चारण करते। उस समय मुझे जिस आन्तरिक सुखकी अनुभूति होती, उसका वर्णन मैं नहीं कर सकता।

प्रथम ऑपरेशनके पश्चात् सर्जन महोदय बाहर चले गये थे। उन्हें बुलाया गया। वे आये। स्थिति देखकर वे घबरा गये, परंतु नानाजीने उन्हें हिम्मत और बल दिया। पुनः ऑपरेशन होना तय हुआ। जब मुझे दूसरा ऑपरेशन करानेके लिये ऑपरेशन थियेटरमें ले जाया जा रहा था, मेरा हृदय भावी शारीरिक पीड़ा और मानसिक कष्टसे विदीर्ण होता चला जा रहा था, आँखोंसे आँसू झर रहे थे। पूज्य नानाजी बगलमें आकर बड़े ही स्नेह और प्यार भरे शब्दोंमें बोले– आप रोते क्यों हैं, हमलोग आपके साथ जो हैं।

उस समय मनको बड़ा संतोष हुआ, परंतु जीवन-मृत्युके बीचमें मैं झूल रहा था। ऑपरेशन थियेटरमें बेहोशीका इंजेक्शन देनेके वक्ततक अखण्ड रूपसे पूज्य नानाजीकी स्मृति बनी रही।

ऑपरेशन हुआ और सफल हो गया, परंतु उस प्रक्रियामें होनेवाली पीड़ाका लेखनीद्वारा चित्रण नहीं हो सकता। पूज्य नानाजी आकर आश्वासन देते– यह आँधी आयी है, यह भी निकल जायेगी।

वे हॉस्पिटल प्रतिदिन सुबह नौ बजेसे दस बजेके बीच आते। मैं मन-ही-मन उनके आनेकी प्रतीक्षा करता, क्यों कि उनके आते ही हृदय शान्त और शीतल हो जाता। एक बार जब मैं बुरी तरह रोकर उन्हें शारीरिक कष्टकी स्थिति बताने लगा, तब वे बोले– *आप धीरज रखें, अधिक न बोलें। बोलनेसे कष्ट होगा। मुझे सारी स्थितिका ज्ञान है। मैं आपके दोनों ऑपरेशनोंके समय ऑपरेशन थियेटरके अन्दर था। मैंने सब कुछ देखा है। मैं आप सबको देख रहा था, पर मुझे कोई नहीं देख पा रहा था। मैं ऑपरेशन थियेटरके बाहर लोगोंके समक्ष भी था और थियेटरके अन्दर भी। मैं आपसे जो कुछ कह रहा हूँ, बिल्कुल सत्य-सत्य कह रहा हूँ। मुझे झूठ बोलकर आपसे क्या लेना है।*

उस समय मैं और नानाजी दो ही व्यक्ति थे और लोग कमरेके बाहर चले गये थे। दूसरे ऑपरेशनके दो-तीन दिन बाद स्थिति फिर खराब होने लगी। मुझे उस स्थितिका ठीक अनुभव नहीं हुआ। बादमें घरवालोंने मुझे बताया कि मेरा चेहरा विकृत हो गया था। डाक्टर स्वयं घबरा रहे थे। तब सबके प्रबल आग्रहसे पूज्य नानाजीने रात्रिके समय कमरेको बन्द करके कुछ किया और मेरी स्थितिमें सुधार होने लगा।

उस समय मैं गोरखपुर १० अप्रैल १९६९ तक रहा। वे नित्य प्रतिदिन कम-से-कम एक समय मुझे देखनेके लिये नीचे कमरेमें आया करते थे। मैं उनसे आग्रह करता– आप नीचे क्यों आते हैं, मैं आपसे मिलने ऊपर आ जाया करूँगा।

वे बड़ी ही मधुर वाणीमें कहते– मुझे नीचे आकर मिलनेमें सुख मिलता है। मैं जो कुछ भी

आपके लिये कर रहा हूँ, अपने सुखके लिये कर रहा हूँ, मुझे इसमें सुख मिलता है।

दूसरे ऑपरेशनके पाँच महीने बादतक स्वास्थ्य ठीक चलता रहा, परंतु फिर शारीरिक स्थिति गिरने लगी। पूज्य नानाजीको आगे आनेवाली घटनाओंकी जानकारी थी ही। मुझे एक-दो पत्रोंमें उन्होंने संकेत-सा भी किया— *भारी-से-भारी कष्टमें भी मन विचलित न होने पाये, आप हिमालयकी तरह दृढ़ रहें और मन अखण्डरूपसे भगवानकी स्मृति करता रहे।*

सन् १९६९ के श्रीराधाष्टमी महोत्सवपर मैं गोरखपुर आया। उत्सवके चौथे दिन रात्रिमें दस बजे अचानक पेटमें भयंकर पीड़ा शुरू हो गयी। बस, यही कह सकता हूँ कि शरीरसे प्राण नहीं गये, बाकी कुछ नहीं रहा। प्राण रह-रहकर निकलना चाह रहे थे, परंतु पूज्य नानाजीकी अनन्त असीम कृपासे जीवन-दान जो मिलना था।

मुझे ऑपरेशनके लिये दिल्ली ले जानेका निश्चय हुआ। दिल्ली ले जानेके दो दिन पूर्व पूज्य नानाजी अस्वस्थ अवस्थामें भी अकेले कमरेमें आये। उनके अतिरिक्त उस समय कमरेमें और कोई नहीं था। वे करीब बीस मिनटतक बैठे रहे और मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, वे अपनी अमृतमयी दृष्टिसे मुझे जीवन-दान देनेका एक बार फिरसे संकल्प कर रहे हैं।

जब मुझे दिल्ली ले जानेका समय आया, पूज्य नानाजी मेरे कमरेमें आये। पूज्य नानाजीने आश्वासन भरे शब्दोंमें कहा— आप घबराते क्यों हैं! हम आपके साथ जो हैं।

हमलोग दिल्ली पहुँचे। दिल्लीके डाक्टरोंने स्थितिका अध्ययन करके कहा— ८० प्रतिशत उम्मीद नहीं है कि ये बच जाँय, २० प्रतिशत बचनेकी आशा है।

ऑपरेशन होना अनिवार्य था। तीसरा ऑपरेशन २५ सितम्बर १९६९ को हुआ। ऑपरेशन हुआ और इस सफलताका एकमात्र श्रेय केवल पूज्य नानाजीकी असीम कृपा और स्नेहको था। भीषणसे भी अधिक कष्ट रहा। शारीरिक कष्टके साथ-साथ मानसिक अवस्था भी बहुत खराब हो गयी थी, परंतु पूज्य नानाजीकी कृपासे जीवनका वह तूफान भी निकल गया। पूज्य नानाजीकी निरन्तर स्मृति बनी रहती और सांनिध्यका अनुभव होता रहता।

ठीक होनेपर मैं दिल्लीसे गिरिडीह चला गया। पूज्य नानाजी मुझे बराबर पत्र देते रहे। एक पत्रमें उन्होंने लिखा— *जगत्‌का कोई संयोग और वियोग, उत्पत्ति और विनाश मेरे मनको तत्त्वतः विचलित नहीं कर सकते। आप स्वस्थ हो जायँ, बस, मैं यही चाहता हूँ। मुझे लोक और परलोककी कोई चिन्ता नहीं, पर आपके स्वास्थ्यकी चिन्ता है।*

पत्रोंके द्वारा वे आश्वासन, स्नेह और अशीर्वाद देते रहे। स्वास्थ्यकी ओर दृष्टि रखते हुए इलाजके लिये परिवारवालोंने ६ अप्रैल १९७० को मुझे पुनः पूज्य नानाजीके पास गोरखपुर भेज दिया।

पूज्य नानाजीने मेरे जीवनमें भगवद्रसकी धारा प्रवाहित करनेका पूरा प्रयास किया। वस्तुतः जीवनमें भगवत्प्रीति तो केवल पूज्य नानाजी जैसे महाभागवत संतकी कृपासे ही प्राप्त हो सकती है। उन्होंने इसका मेरे हृदयमें बीजारोपण किया और उसे अंकुरित करनेका सतत प्रयत्न किया। उन्होंने मुझे कई पारमार्थिक अनुभूतियाँ भी करायीं, जिन्हें मैं अपनी अमूल्य निधि के

रूपमें गुप्त ही रखना चाहता हूँ। उन्होंने मुझे जीवन-दान दिया, इसे मैं कभी भूल नहीं पाऊँगा। मेरा शेष जीवन श्रीराधा-माधवके स्मरण-चिन्तनमें बीत जाय— बस, मेरी यही पूज्य नानाजीसे याचना है। ■

श्रीचन्द्रकान्तजी फोगला

[१] संतत्व शृंखला

घटना उस समयकी है, जब मेरी आयु चौदह-पंद्रह वर्षकी रही होगी। मनोरंजन ही ध्येय था जीवनका। किसी तरह इधर-उधर पड़ी एक साधारण बन्दूक (AIR-GUN) हाथ लग गयी और साथमें छर्रोंका डिब्बा भी। अब क्या था, निशानेबाजीका अभ्यास आरम्भ हो गया। निशानाबाजी कभी किसी टूटे हुए बर्तनपर तो कभी किसी दीवालपर। और कभी कुछ सामने न दीखा तो कोमल कुसुम ही निशाना बनते। अभ्याससाध्य इस मनोरंजनमें धीरे-धीरे सफलता भी मिलने लगी। साथके समवयस्क मित्र मेरी सफलताकी प्रशंसा भी करते। अब मेरे प्रशंसक मुझे जड़के स्थानपर चेतनका लक्ष्य करनेके लिये उकसाने लगे। उनकी प्रशंसा अच्छी भी लगती, पर बचपनसे घरके वातावरणका प्रभाव कुछ ऐसा था कि हिम्मत नहीं होती कि किसी जीवपर निशाना साधूँ।

मित्रों द्वारा रोज-रोज उकसाये जानेसे मैंने भी हिम्मत कर ही ली। इधर बन्दूकका घोड़ा दबा और उधर चहचहाती बुलबुल पेड़परसे जमीनपर गिरकर तड़फड़ाने लगी। मैं भी घबड़ा गया। किसी पक्षीको मारनेका पहला ही प्रयास था। बुलबुलको तड़फड़ाता देख दयाका संचार तो हुआ ही, पर भय उससे भी अधिक था। कहीं यह बात ऊपर नानाजी (पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) के कानोंतक चली गयी तो. . . . ? डरके मारे मेरा रोआँ-रोआँ काँप रहा था, पर मैं करता भी क्या, तीर हाथसे जो निकल चुका था। किसी तरह एक नौकरके हाथ-पाँव जोड़कर उस पक्षीको तो फेंकवाया।

इसके थोड़ी देर बाद संवाद मिला— आपको ऊपर बाबूजी (नानाजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) बुला रहे हैं।

अब तो मेरी जो दशा हुई, वह मैं ही जानता हूँ। पर उपाय तो कुछ था ही नहीं। काँपते-काँपते ऊपर गया। मुझे देखकर नानाजीने कहा— बैठो।

रुद्ध कण्ठसे वे केवल इतना ही कह पाये और उनके नयनके कगारोंसे अश्रुकण लुढ़कने लगे। उनके अश्रुपूरित नयनोंको देखकर स्वाभाविक ही मेरी आँखें भी भर आयीं और भयका स्थान ग्लानिने ले लिया था।

फफकते हुए उन्होंने केवल इतना ही कहा— आगेसे ऐसा कभी मत करना। उनको भी उतना ही कष्ट होता है, जितना अपने लोगोंको।

बाल-सुलभतासे मैंने रोते हुए कहा— आप रोते क्यों है ? मैं अब कभी नहीं मारूगाँ।

उन्होंने बताया— मैं रोना चाहता नहीं, पर क्या करूँ ? जबसे यह बात सुनी है, अपने आप

आँखें भर आती हैं। जाओ, आगेसे ऐसा मत करना।

आज भी जब इस घटनाके विषयमें सोचता हूँ तो ऐसा लगता है यह सब और कुछ नहीं, संत-परम्पराकी कड़ी जोड़नेके लिये इतिहासने स्वयंको दोहराया है।

[२] धूपका ताप और मनका पश्चात्ताप

ज्येष्ठ मासकी भीषण गर्मीके दिन थे और कड़कड़ाती धूपके तापसे परेशान होनेके बाद भी जो तीर्थ-यात्री गंगा-पार जाना चाहते थे, वे गीताभवन (स्वर्गाश्रम) के घाटपर पंक्ति-बद्ध खड़े थे मोटर-बोटमें बैठनेके लिये। श्रीगंगाजीके उस पार ले जानेके लिये मोटर-बोट घाटपर लगी हुई थी। कुछ तीर्थ-यात्री मोटर-बोटमें बैठ भी गये थे। इसी समय पूज्य नानाजी डालमिया कोठीसे आकर मोटर-बोटकी ओर बढ़ने लगे। उनको किसी कार्यसे उस पार जाना था। उनको बढ़ते देखकर पंक्तिमें खड़े एक पंजाबी नवयुवकने टिप्पणी की— क्यों, हमलोगोंको विलम्ब नहीं हो रहा है क्या ? पसीनेसे तर-बतर तो हम सब भी हैं, पर कुछ बोलना व्यर्थ ही है !

इस तरहके विरोधकी मन्द ध्वनि नानाजीके कानोंतक भी जा पहुँची। स्वेद-कणोंसे भरा मस्तक, अत्यधिक श्रमसे श्रान्त शरीर, छड़ीके सहारे उठते हुए उनके चरण क्षणार्धमें वहीं ठहर गये। नानाजी उस पंजाबी नवयुवककी ओर बढ़े और स्नेहसे कुछ बोलना ही चाहते थे कि गीताभवनके उत्साही सत्संगी, जिन्होंने अपनी निस्स्वार्थ सेवाएँ अपने प्रवासके समयमें गीताभवनको अर्पित कर रखी थी, एक साथ ही बोल उठे— आप जानते हैं, ये कौन हैं ?

सत्संगी बन्धुका स्वर तीखा था और प्रश्न भी टेढ़ा। पंजाबी नवयुवकका स्वर भी तीखा हो चला था। उसने तपाकसे कहा— होंगे कोई, हमसे क्या, पर जब सब पंक्ति (लाइन) से जा रहे हैं, तब इन्हें क्रम तोड़कर यह सुविधा क्यों दी जा रही है ?

सत्संगी बन्धु उग्र स्वरमें बोल पड़े— जबान सँभालकर बोलिये, नहीं तो . . . . .

तभी स्नेह मिश्रित स्वरमें नानाजी बोल उठे— नहीं-नहीं, ये ठीक ही तो कह रहे हैं। व्यवस्था तथा क्रमकी दृष्टिसे यही उचित है।

उत्साही सत्संगियोंने परिचय देनेके उद्देश्यसे उस नवयुवकसे कहा— बतलायें इनका परिचय . . . .

गम्भीर स्वरमें नानाजीने सत्संगियोंसे कहा— व्यर्थकी बात मत कीजिये।

पंजाबी नवयुवक भी असमञ्जसमें पड़ गया। उसे भी सोचनेके लिये विवश होना पड़ा कि आखिर बात क्या है ? इसी बीच नानाजी मन्द-स्मितके साथ उस नवयुवकके कंधेपर हाथ रखते हुए बोले— आप जाइये। मैं अब पंक्तिसे आकर ही बोटमें बैठूँगा।

और उसी स्मितके साथ वे पीछे लौट पड़े पंक्तिमें खड़े होनेके लिये।

उसी रात्रिको नानाजी गीताभवनमें प्रवचन दे चुकनेके बाद आसनसे उठ ही रहे थे कि अचानक श्रोताओंके विशाल समुदायमेंसे वह ही नवयुवक सामने आ उपस्थित हुआ। लज्जाके कारण उसका मस्तक झुका हुआ था। पश्चात्तापका परिताप उसके मुखपर छाया हुआ था। वह कहने लगा— क्षमा कर दीजिये मुझे। मैंने आपको पहचाना नहीं था। मेरे कारण दोपहरमें आपको डेढ़ घंटे धूपमें प्रतीक्षा करनी पड़ी।

उस नवयुवकके रुद्ध कण्ठसे क्षमा-याचनाका स्वर फूट पड़ा। पासमें खड़े हुए उस नवयुवकको गलेमें भरते हुए नानाजीने कहा— *नहीं-नहीं, इसमें क्षमाकी क्या बात है? क्षमा तो उसे किया जाता है, जिसने कोई अपराध किया हो। आप सबने तो मेरी भूलको ही सुधारा है। क्षमा तो मुझे माँगनी चाहिये।*

नवयुवकका हृदय रो उठा। अपने अहंकारके पोषणके लिये कहे गये शब्द कचोट रहे थे और मनपर थी नानाजीकी महान सहनशीलताकी, क्षमाकी, उदारताकी एवं स्नेहकी अमिट छाप।

[३] अभद्रके प्रति भद्र व्यवहार

सन् १९६७ की बात है। एक व्यक्ति अपने को विद्यार्थी घोषित करता हुआ पूज्य नानाजीके पास आया। नानाजी उन दिनों अस्वस्थ थे और ऊपरके कमरेमें रहते थे। नीचे नानाजीके निजी सहायक आदरणीय श्रीकृष्णजी आनेवाले व्यक्तियोंसे मिलकर और उनकी आवश्यकताको जानकर नानाजीको सूचित कर दिया करते थे। नानाजी आगत महानुभावकी आवश्यकता समझकर सहायताकी रकम भाई श्रीकृष्णजीको बता देते थे और वे आगत महानुभावको उतनी रकम देकर उनका स्वागत कर दिया करते थे। आवश्यक होनेपर नानाजी आगत सज्जनको अपने पास बुलाकर भी बात कर लेते थे। उस दिन आगत महानुभावको देखते ही भाई श्रीकृष्णजीने पहचान लिया कि इस व्यक्तिको कई बार नानाजीके यहाँसे सहायता मिल चुकी है और वह वस्तुतः विद्यार्थी नहीं है। भाई श्रीकृष्णजीने उसे समझाया— आप कई बार सहायता पा चुके हैं। बेचारे बहुत लोग अभावग्रस्त है, यहाँसे पानेका अवसर सभीको मिलना चाहिये। बार-बार एक ही व्यक्ति आता रहे, यह बात तो ठीक नहीं। दूसरे, आप विद्यार्थी न होकर अपनेको विद्यार्थी क्यों कहते हैं? किसीकी सज्जनताका दुरुपयोग तो नहीं करना चाहिये। सच्ची-सच्ची बात कहिये कि मैं अभावग्रस्त हूँ, मुझे कुछ चाहिये।

इतना सुनते ही वे अपनी कलई खुलनेसे उत्तेजित हो गये और अनर्गल शब्द बोलने लगे। भाई श्रीकृष्णजीको यह बुरा लगा और उन्होंने गम्भीर स्वरमें कहा— आप भद्रतापूर्वक व्यवहार करें तो मैं आपकी बात सुननेको तैयार हूँ, परंतु इस प्रकार उत्तेजित होकर अशोभनीय शब्द कहना चाहते हैं तो आपको यहाँ नहीं आना चाहिये था। आपलोग अपना अभाव निवेदन करने आते हैं कि इस प्रकार धोखा देकर क्रोध करनेके लिये?

इतना सुनते ही आगत सज्जन बहुत क्रोधमें आ गये और भाई श्रीकृष्णजीको गाली देने लगे। हल्ला सुनकर मैं घटना स्थलपर आ गया। उस व्यक्तिको गाली देते देखकर मुझे बहुत बुरा लगा। मैंने दरवानको आवाज देकर बुलाया और उन सज्जनको समझाकर बगीचेके बाहर कर दिया। इतना ही नहीं, मैं नानाजीके पास गया और उन्हें बतलाया कि किस प्रकार बार-बार सहायता प्राप्त करने वाला व्यक्ति अपनी कलई खुलनेसे भाई श्रीकृष्णजीको बुरी-बुरी गाली देकर गया है।

नानाजी मेरी बातें सुनते रहे। पीछे वे बोले— *वह अपने घरकी किसी अभावमयी स्थितिसे परेशान होगा, इसीसे विद्यार्थीका स्वाँग बनाकर आया था। मनुष्य जब अभावमें होता है, तब उसका विवेक मारा जाता है। उसने गाली दी, यह उसकी भूल है, पर गाली किस लाचारीकी स्थितिमें दी, यह तो हम नहीं जानते। बेचारेकी परिस्थितिमें हम होते, तब पता चलता कि हम*

क्या करते।

मैं अपनी बातपर अड़ा रहा और नानाजीसे बोला– भाई श्रीकृष्णजीको गाली देना आपको गाली देना है। ऐसे व्यक्तिको तो कभी भी एक पैसा नहीं देना चाहिये।

नानाजीने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। वे चुप हो गये। थोड़ी देर पश्चात् आगत महानुभावका कहींसे टेलीफोन आया। नानाजीने टेलीफोन उठाया। उसने कहा– मैं आपके यहाँ अपनी आवश्यकता निवेदन करने गया था, पर आपके व्यक्तिसे कुछ तकरार हो गयी। उन्होंने मुझे बगीचेसे बाहर जानेका आदेश दिया और मैं बिना दुःख सुनाये चला आया। मेरी माँ बीमार है, मुझे इतने रुपये चाहिये।

नानाजीने टेलीफोनपर सब बातें सुनकर कहा– आज तो नहीं, पीछे मिलियेगा।

नानाजीने टेलीफोन रख दिया, पर उन्हें कहाँ चैन ? उन्होंने दस मिनट बाद पुनः टेलीफोन किया। नानाजीने पुनः टेलीफोन उठाया और कहा– मैंने आपसे कह दिया था कि आज नहीं।

इसपर वे टेलीफोनपर ही गिड़गिड़ाने लगे और अपनी आवश्यकताका महत्त्व बताने लगे। नानाजी द्रवित हो गये और बोले– आ जाइये। आपको इतने रुपये मिल जायेंगे। आप उसी व्यक्तिसे मिल लीजियेगा। वह आपको इतने रुपये दे देगा। आपको इस तरह झगड़ा नहीं करना चाहिये। गाली तो कभी देनी ही नहीं चाहिये।

उसने कहा– हाँ, मुझसे भूल हो गयी। मैं क्रोधमें आ गया और मेरे मुँह से अपशब्द निकल गये। मैं उन महानुभावसे माफी माँग लूँगा।

उसे आनेकी बात कहकर नानाजीने भाई श्रीकृष्णजीको बुलाया और कहा– मुझे चन्दूने सब बता दिया है कि एक सज्जन आये थे। उन्होंने तुमसे झगड़ा किया और फिर वे गालीतक देने लग गये। वे झूठ बोलकर अपना अभाव बतला रहे थे। यह मैं जानता हूँ, पर बेचारे हैं तो कष्टमें। उनकी माँ बीमार है। उनका टेलीफोन आया है। मैंने उनको आनेको कह दिया है। तुम उन्हें इतने रुपये दे देना। दुःखी व्यक्तिका विवेक नष्ट हो जाता है।

भाई श्रीकृष्णजी नानाजीके हृदयकी कोमलतासे परिचित थे। उन्होंने कहा– मैं देनेके पक्षमें हूँ। अपने पास हो तो अभावग्रस्तको देना ही चाहिये; पर वे झूठ बोल रहे थे। इसीसे मैंने उन्हें समझाया कि सच्ची बात कहिये। झूठ क्यों बोलते है ? आपने उन्हें आने के लिये कहा ही है। उनके आनेपर मैं उन्हें उतने रुपये दे दूँगा।

वे सज्जन आये और भाई श्रीकृष्णजीसे मिले। वे अपनी गलतीके लिये बार-बार क्षमा याचना करने लगे।

भाई श्रीकृष्णजीने कहा– मेरे मनपर इस घटनाका कोई प्रभाव नहीं है, पर आप कहीं भी जायें, कुछ भी कहें, पर झूठका आश्रय नहीं लेना चाहिये। सही-सही रूपमें अपनी आवश्यकताका निवेदन कर देना चाहिये।

वे सज्जन बहुत लज्जित हुए और रुपये पाकर आशीर्वाद देते हुए चले गये। रुपये देकर जब भाई श्रीकृष्णजी नानाजीसे मिले, तब नानाजीने कहा– *भैया! अभावग्रस्तको विवेक नहीं रहता। दूसरे, अभावग्रस्तके व्यवहारकी ओर न देखकर उसके अभावकी ओर देखना चाहिये।*

तीसरे, भूल करनेवालेके प्रति अपना सद्व्यवहार कम नहीं होना चाहिये, बल्कि उसके साथ अधिक सद्व्यवहार करना चाहिये। ऐसे व्यक्तिके प्रति किया गया सद्व्यवहार ही उसके सच्चे सुधारमें हेतु बनता है। शासनद्वारा कभी सच्चा सुधार सम्भव नहीं है। शासनसे अपराध दृढ़मूल हो जाता है। शासन अपराधीका सुधार नहीं करता है, अपितु अपराधीको और अधिक अपराधी बनाता है।

[४] कथनी-करनीमें एकरूपता

माँ भागीरथीके बायें तटपर स्थित गीताभवन (स्वर्गाश्रम) में प्रत्येक वर्ष ग्रीष्मऋतुमें लगभग तीन-साढ़े तीन महीने सत्संगका आयोजन होता है। अब तो गंगाजीपर सरकारने पुल बनवा दिया है, पर पहले गीताभवनमें ठहरनेवाले सत्संगी बन्धुओंको गंगापार ले जानेके लिये मोटरबोटकी व्यवस्था रहती थी और वह व्यवस्था अब भी है। प्रतिदिन दर्शन करनेके लिये सैकड़ों-हजारों तीर्थयात्री स्वर्गाश्रम पधारते हैं। उस मोटरबोट द्वारा दर्शनार्थ आने-जानेवाले यात्रियोंको एवं पर्यटकोंको भी गीताभवनके सत्संगी बन्धुओंके साथ यथासम्भव गंगापार करनेका सुअवसर दिया जाता है, पर जब गंगाजीमें जल बढ़ जाता है, तब बोटद्वारा गंगापार करना निरापद नहीं रहता। उन दिनों अनिवार्य होनेपर ही सीमित संख्यामें यात्रियोंको लेकर बड़ी सावधानीके साथ बोट चलाया जाता है। उस समय दर्शनार्थ आये हुए यात्रियोंको बोटद्वारा गंगापार होनेकी सुविधा बहुत कम उपलब्ध हो पाती है, पर *'रहत न आरत के चित चेतू'* की उक्तिके अनुसार यात्री जबरन बोटपर सवार होनेका प्रयत्न करते हैं। बोटके कर्मचारी स्थितिकी गम्भीरताका ज्ञान रखनेके कारण उन व्यक्तियोंके साथ सहानुभूति रखते हुए भी उनके दुराग्रहको स्वीकार नहीं कर पाते। परिणामतः कभी-कभी कुछ यात्री उग्र हो जाते और बोट-कर्मचारियोंके साथ संघर्ष कर बैठते।

इसी प्रकारकी विकट परिस्थिति कई साल पहले एक दिन गीताभवनके बोट-कर्मचारियोंके समक्ष उपस्थित हो गयी। गीताभवनमें ठहरे हुए सत्संगी-बन्धुओंको पार पहुँचानेके लिये बोट घाटपर लगा हुआ था और उसमें सामान लादा जा रहा था। दर्शनार्थ आनेवाले यात्रियोंको उस बोटद्वारा पार ले जाना सम्भव नहीं था। अधिक व्यक्तियोंके सवार होनेसे बोटके डूब जानेका भय था। बोटके कर्मचारी दर्शनार्थियोंको हाथ जोड़कर बड़ी ही नम्रतापूर्वक अपनी लाचारीका परिचय दे रहे थे और प्रायः यात्री उनकी विवशता समझकर वहाँसे हट जा रहे थे। इसी समय एक संभ्रान्त परिवारके आठ-दस सदस्य उस बोटपर चढ़नेके लिये पहुँचे। उनमें दो-तीन पुरुष थे, दो-तीन बच्चे तथा शेष महिलाएँ। बोटके कर्मचारियोंने उन्हें पूरी स्थितिसे अवगत कराया और समझाया– गीताभवनमें ठहरे हुए कुछ सत्संगी-बन्धुओंको उस पार पहुँचानेके लिये ही बोट लगा हुआ है। उनकी संख्या पर्याप्त है। आजकल श्रीगंगाजी बढ़ी हुई हैं और ऐसी स्थितिमें अधिक यात्रियोंके साथ बोट ले जानेमें खतरा है। उसके उलट जानेका पूरा भय है।

उन नागरिकोंने कर्मचारियोंकी इस अनुनय-विनयका मजाक उड़ाया और जबरदस्ती बोटपर चढ़नेका प्रयत्न किया। जब कर्मचारियोंने उन्हें ऐसा करनेसे रोका, तब उन नागरिकोंने अपशब्द कहे तथा पीटनेकी धमकी दी। बात बढ़ गयी और कर्मचारियोंपर कुछ घुँसे पड़े तथा उनके कपड़े भी फट गये। उन यात्रियोंमें भी जो सबसे बड़े व्यक्ति थे, उनके भी कपड़े फट गये।

स्थितिको बिगड़ते देखकर घाटपर खड़े लोगोंने बीचमें हस्तक्षेप करके दोनों ओरके व्यक्तियोंको पृथक्-पृथक् कर दिया।

बोटके कर्मचारी बेचारे कर्मचारी ही ठहरे, अतएव वे उन यात्रियोंको भला-बुरा कहते हुए अपने काममें लग गये, परंतु उन यात्रियोंने इस घटनाको बड़ा अपमान समझा और वे इसके लिये पुलिसमें रिपोर्ट लिखानेके लिये जाने लगे। संयोगवश वहाँपर खड़े हुए कुछ व्यक्तियोंने उन्हें समझाया– यह बोट गीताभवनका है और गीताभवनके प्रधान श्रीभाईजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) आजकल यहीं हैं। आप उन्हींके पास जाइये और उन्हें अपना दुःख सुनाइये।

यात्रीलोग 'कल्याण'के पुराने ग्राहक थे और उनके हृदयमें नानाजीके प्रति बड़ी श्रद्धा थी। अतएव लोगोंका परामर्श मानकर वे नानाजीके निवास-स्थान डालमिया कोठीपर जा पहुँचे। क्रोधके मारे उनका हृदय जल रहा था और वे बड़े ही कठोर शब्दोंमें प्रतिशोध लेनेके लिये विविध धमकियोंका उल्लेख कर रहे थे।

उस समय नानाजी अपने कमरेमें थे। जब उन्होंने कुछ लोगोंकी क्रोधजनित धमकियाँ तथा अपशब्द सुने, तब वे अपनी सहज प्रसन्न एवं शान्त मुद्रामें कमरेसे बाहर आये। दोनों हाथ जोड़े हुए और सबका अभिवादन करते हुए उन्होंने कहा– आइये, यहाँ विराजिये।

नानाजीके इन प्रेमभरे शब्दोंने तथा उनकी सहज आत्मीयताने जादूका-सा काम किया और वे सभी सज्जन नानाजीके समीप वहीं बरामदेमें बैठ गये। नानाजीने कहा– आपलोग इतने दुःखी क्यों हो रहे हैं, कृपया निवेदन करें।

इतना संकेत पाते ही उन्होंने अपना रोष प्रकट करना प्रारम्भ कर दिया। मनुष्य स्वभावकी यह कमजोरी है कि उसकी दृष्टि अपनी भूलोंकी ओर नहीं जाती, दूसरेमें ही सब दोष दिखलायी पड़ते हैं। यही बात उन लोगोंके साथ थी। उन्होंने खूब अतिरञ्जित करके बोटके कर्मचारियोंका दोष बतलाया तथा वे प्रश्न करने लगे– हमें भी आज घर लौट जाना है। ऐसी स्थितिमें हमें बोटसे पार क्यों नहीं किया गया?

नानाजीने बड़े ही शान्तभावसे उनकी प्रत्येक बात सुनी और फिर वे बोले – आपलोग जैसा कह रहे हैं, यदि ऐसा ही हुआ है तो सचमुच बहुत ही अशोभन है, परंतु बोटके कर्मचारी पुराने व्यक्ति हैं और प्रतिदिन उनका सैकड़ों व्यक्तियोंसे काम पड़ता है। आजतक ऐसे अभद्र व्यवहारकी शिकायत उनके सम्बन्धमें नहीं आयी है। सम्भव है, आपलोगोंके द्वारा हुई किसी चेष्टाका उन्होंने गलत अर्थ लगा लिया हो। मैं उन लोगोंको बुलाकर पूछूँगा और उनकी भूलके लिये उन्हें सावधान करूँगा। आपलोग उन्हें क्षमा कर दीजिये और शान्त हो जाइये।

नानाजीके ये सद्भावपूर्ण शब्द भी उन लोगोंके क्रोधसे तप्त हृदयको रुचिकर नहीं लगे। वे क्रोध और दुःखके आवेशमें कर्मचारियोंके प्रति प्रतिहिंसाके शब्द बोलने लगे। संतका हृदय नवनीतके सदृश होता है। वे किसीके भी अनिष्टको सहन नहीं कर पाते। नानाजीको लगा होगा कि ये महानुभाव अपने व्यस्त जीवनमेंसे कुछ समय निकालकर माँ गंगाके जलसे पवित्र होने तथा पुण्यभूमि एवं संत-महात्माओंके दर्शन करनेके लिये आये हैं, किन्तु अहंताके वशीभूत होकर ये लोग यहाँसे अपने साथ ले जा रहे हैं– प्रतिहिंसा, द्वेष, घृणा, असद्भाव, अशान्ति,

जो लोक और परलोक दोनोंके लिये विघातक हैं। नानाजीने इनके इन दोषोंके प्रक्षालनका निश्चय किया। उन्होंने अपने दोनों हाथ जोड़ लिये और उन यात्रियोंसे बड़े ही मन्द स्वरमें निवेदन किया— *बोटके कर्मचारी हमारे व्यक्ति हैं। कर्मचारीकी चेष्टा मालिककी चेष्टा होती है। हमारे कर्मचारियोंके द्वारा जो कुछ भी अपराध हुआ है, उसे मैं अपने द्वारा हुआ अपराध मानता हूँ और इसके लिये आप सबसे क्षमा चाहता हूँ। आप उन कर्मचारियोंके प्रति प्रतिहिंसाके विचारको सर्वथा त्याग दीजिये। मैं आपके समक्ष नतमस्तक हूँ . . . . ।*

इतना कहते-कहते नानाजीकी आँखोंमें अश्रुकण छलक आये और उन्होंने अपना मस्तक उन लोगोंके समक्ष जमीनपर टेक दिया। उनके दोनों हाथ उसी प्रकार जुड़े हुए थे। सबके श्रद्धास्पद, वयोवृद्ध-ज्ञानवृद्ध-महापुरुषको इस प्रकार नेत्रोंमें जल भरे, हाथ जोड़े तथा पृथ्वीपर मस्तक टेककर क्षमा-याचना करते हुए देखकर यात्रियोंका हृदय द्रवित हो गया और वे सब-के-सब सुबक-सुबककर रोने लगे। नवयुवकोंने अपने हाथोंसे नानाजीके मस्तकको ऊँचा किया और स्वयं उनके परम-पावन चरणोंमें गिर पड़े। एक अपूर्व सात्त्विक वातावरण उपस्थित हो गया। अन्तरमें परम निर्मलता परिव्याप्त हो गयी। सब मौन थे और सबकी आँखें झर रही थीं। यात्रियोंका रोष, उनका असन्तोष, उनकी घृणा आदि अश्रु-विन्दुओंके साथ बह गये थे। अब उनका हृदय इस वेदनासे परिपूर्ण था कि नानाजी जैसे सच्चे एवं निर्दोष संतको अपने व्यवहारसे हमने क्यों व्यथित किया। वे उनके चरणोंपर सिर रखे हुए यही भीख माँग रहे थे— भाईजी ! हमारे कारण आपका हृदय व्यथित हुआ, इसके लिये हमें क्षमा कीजिये।

नानाजीने अपनी धोतीके छोरसे अपने नेत्र पोंछे और उन नवयुवकोंके सिरपर प्यारसे हाथ फेरते हुए उन्हें ऊपर उठाया। साथ ही उन्होंने अपने परिकर भाई श्रीकृष्णजीको, जो इस मर्मस्पर्शी दृश्यको देखकर द्रवित हो रहे थे, जल लानेका आदेश दिया। जल आनेपर नानाजी ने सब व्यक्तियोंको मुँह धोनेके लिये कहा। जब सब मुँह धोकर तैयार हो गये, तब नानाजीने उनसे प्रार्थना की— भोजन तैयार है। आप सब लोग भोजन करके जाइये।

जिस भाईके कपड़े फट गये थे, नानाजीने उनके लिये नये कपड़े लानेका आदेश भाई श्रीकृष्णजीको दिया, किन्तु उस भाईने हाथ जोड़कर विनय की— भाईजी ! आपकी कृपासे किसी चीजकी कमी नहीं है। कपड़े साथमें हैं, मैं बदल लेता हूँ। हाँ, आपके यहाँका प्रसाद हमलोग अवश्य ग्रहण करेंगे।

सब व्यक्ति प्रसाद ग्रहण करने लगे। पूज्या नानीजी तथा परिवारके अन्य सदस्य बड़ी मनुहारके साथ उन्हें भोजन करा रहे थे। उधर नानाजीने बोटके कर्मचारियोंको बुलवाया और उन्हें बड़े ही प्रेमसे समझाया। उन लोगोंने पूरी परिस्थितिका परिचय देते हुए अपनी भूल स्वीकार की कि उन लोगोंके अभद्र व्यवहार करनेपर भी हमें क्षुभित नहीं होना चाहिये था। अपनी भूलके लिये वे बार-बार क्षमा-याचना करने लगे। नानाजीने उनसे कहा— तुमलोगोंको यात्रियोंसे क्षमा-याचना करनी चाहिये, वे लोग भोजन करके अभी बाहर आ रहे हैं तथा बड़े प्रेम सहित उन्हें बोटद्वारा उस पार पहुँचाकर आना।

इसी बीच यात्री प्रसाद ग्रहण करके बाहर आ गये। बोटके कर्मचारियोंने उनसे हाथ जोड़कर अपनी भूलके लिये क्षमा माँगी। उन यात्रियोंमेंसे पुरुषोंने कहा— आप लोग हमें हमारे अभद्र

व्यवहारके लिये क्षमा कीजिये।

दोनों ओरके हृदय शान्त थे, दोनों ओर अपनी भूलकी स्वीकृति थी और उसके लिये क्षमा-याचना थी। नानाजीने यात्रियोंसे प्रार्थना की– अब आपलोग इन कर्मचारियोंके साथ जाइये। ये आपलोगोंको बोटद्वारा उस पार पहुँचा देंगे।

सबने नानाजीको प्रणाम किया और उनका आशीर्वाद लेकर बोटके कर्मचारियोंके साथ बिदा हो गये। यात्रियोंके जानेके पश्चात् भाई श्रीकृष्णजीने नानाजीसे कहा– बाबूजी ! आपने तो साधुताकी हद ही कर दी। इस प्रकारसे उन नवयुवकोंके सामने नेत्रोंमें जल भरकर तथा हाथ जोड़े हुए पृथ्वीपर मस्तक टेककर क्षमा-याचना करनेकी क्या आवश्यकता थी ?

नानाजीने सहज भावसे उत्तर दिया– *तुम्हारा अपने दृष्टिकोणसे कहना ठीक है, किन्तु किसीको हमारे व्यवहार द्वारा उद्वेग प्राप्त हुआ हो तो उसके लिये हमें सच्चे हृदयसे परिताप होना ही चाहिये। ऐसा करना साधुता नहीं है, यह तो अपनी भूलका परिशोधन है। बोटके कर्मचारी हमारे हैं, उनके व्यवहारका दायित्व हमपर है। हम गीताभवनमें प्रवचनकर्ताके स्थानपर बैठकर तथा सम्पादकके रूपमें 'कल्याण'में जो-जो बातें कहते-लिखते हैं, कम-से-कम वे तो हमारे जीवनमें होनी ही चाहिये। यदि वे हमारे जीवनमें और व्यवहारमें न आयें तो हमें न तो प्रवचन ही करना चाहिये, न 'कल्याण'में ही कुछ लिखना चाहिये। कथनी-करनीमें एकरूपता अनिवार्य है। आचरणके बिना उपदेश व्यर्थ है, बकवास है, कुत्तेकी भाँति भौंकना है।*

करनी बिन कथनी कथे, अज्ञानी दिन-रात।
कूकर जिमि भूसत फिरे, सुनी-सुनायी बात।।

भाई श्रीकृष्णजीको अपनी भूल समझमें आ गयी।

[५] जाड़ेकी रातोंमें

पूज्य नानाजी अपने प्रवचनोंमें, लेखोंमें तथा व्यक्तिगत परामर्शमें इस बातको बहुधा कहा करते थे कि धनकी तीन गतियाँ होती हैं– *दान, भोग और नाश, जो सर्वथा अपरिहार्य है, होगा ही, अतः इस विनाशी धनको विश्वरूपमें विराजित अविनाशी प्रभुकी सेवामें लगा देनेमें ही इसकी सार्थकता है। भोग मृगमरीचिकाके सदृश हैं, उन्हें जितना भोगेंगे, तृष्णा उतनी ही बढ़ती रहेगी, अतएव जो कुछ धन हमें प्राप्त है, उनमेंसे आवश्यकताभर अपने ऊपर खर्च करके शेषको अभावग्रस्तोंकी सेवामें लगा ही देना चाहिये।*

जो नानाजीके जीवनसे परिचित हैं, वे जानते हैं कि उनकी कथनी और करनीमें कितना साम्य था। वे उतना ही कहते थे, जिसका पालन वे अपने जीवनमें स्वयं करते थे। उनके पास व्यक्तिगत रूपमें कुछ भी नहीं था, पर उन जैसा दानी मिलना कठिन है। वे दिन-रात खुले हाथों बाँटते ही रहते थे। उनके द्वारसे कभी कोई खाली हाथ नहीं लौटता था। भगवानकी कृपासे नानाजीका भण्डार सदा भरा ही रहता था।

सेवाके नये-नये रूप वे अपनाते रहते थे। सर्दी आरम्भ होते ही उनके यहाँसे ऊनी स्वेटर, चद्दर, कम्बल आदिका वितरण आरम्भ हो जाता था। इतना ही नहीं, पौषकी अँधेरी, ठिठुरती रात्रियोंमें, जब हवा भालेकी नोककी तरह प्रहार करती थी, हड्डीको कँपा देनेवाली उस ठंडमें आर्त-सेवक नानाजी अपने बिछावनसे उठ खड़े होते। जब सारा शहर अन्धकारमें डूबा हुआ

होता, शहरके सभी निवासी अपने-अपने सामर्थ्यके अनुसार पक्के भवन या कुटियामें रजाई या चिथड़ोंकी बनी गुदड़ी लपेटकर निद्रामें निमग्न होते, तब उन पर-दुःखकातर नानाजीको सुन पड़ती उन निराश्रितोंकी आवाज। वृक्षके नीचे पड़े शीतके भीषण प्रहारसे संत्रस्त भाई-बहिनोंकी कराह! नानाजी विस्मृत कर जाते अपने वृद्ध जर्जर शरीरको एवं सम्पूर्ण शारीरिक कष्टोंको और वे निकल पड़ते जीपमें निराश्रितोंके शीत-निवारणकी व्यवस्था करनेके लिये। कुछ विश्वासपात्र साथी भी साथमें हो जाते। कभी-कभी मुझे भी साथ जानेका अवसर मिला है।

जीपके पीछे लगा ट्रेलर ऊनी कम्बलोंसे भरा रहता और नगरके राजपथको रौंदती हुई उनकी जीप आगे बढ़ जाती उस सड़ककी ओर, उस खण्डहरकी ओर, जहाँ शीतसे ठिठुरते हुए-वस्त्र हीन भाई-बहिन सिकुड़े हुए पड़े रहते थे। जीप एक ओर खड़ी कर दी जाती और नानाजी जीपसे उतरकर उस अभागोंके उस कष्टको अपने हाथोंसे आवृत कर देते। ऊनी कम्बलोंसे उन्हें ढँकते और तुरन्त उस स्थानसे हट जाते। साथके हम बालक भी कम्बल ले-लेकर उन ठिठुरते भाई-बहिनोंको ओढ़ा देते।

जब वहाँ लेटे हुए सभी व्यक्तियोंको कम्बलोंसे ढक दिया जाता, तब इस आशंकासे कि कोई व्यक्ति उन्हें इस नवीन आच्छादनोंसे वंचित न कर दे, हमारी टोलीका एक व्यक्ति मन्द स्वरमें पुकारकर उन्हें तनिक-सा सावधान कर देता। इस क्रियासे कोई-कोई व्यक्ति उठकर बैठ भी जाता और अपने ऊपर एक गर्म कम्बल देखकर वह आश्चर्यचकित हो जाता। वह उस कम्बलको देनेवाले दानीके दर्शन करनेके लिये उत्कण्ठाभरी दृष्टि इधर-उधर डालता, परंतु इससे पूर्व ही नानाजीकी जीप वहाँसे चल पड़ती शहरके दूसरे कोनेकी ओर, जहाँ ऐसे ही अन्य भाई-बहिन शीतसे ठिठुरते होते।

इस प्रकार निराश्रित भाई-बहिनोंके शीत-निवारणकी इस गुप्त सेवाका क्रम प्रतिवर्ष ही चलता। जहाँ नानाजी स्वयं न जा पाते, वहाँ वे अपने स्वजनों और विश्वासी सेवकोंके द्वारा वह सेवा सम्पन्न करवाते। ■

श्रीकैलाशचन्द्रजी सेकसरिया

सबके विश्वास-पात्र थे

श्रीभाईजीके सामने किसीको भी अपना हृदय खोलकर रखनेमें संकोच नहीं होता था। बड़े-बड़े महात्मा, धनपति, विद्वान तथा राज्याधिकारी अपनी छिपी-से-छिपी कमजोरी भी उनके सामने रखते थे और उनसे परामर्श लेते थे। एक बार श्रीभाईजी पूज्य श्रीमालवीयजी महाराजके पास, वाराणसीमें उनके निवास स्थानपर बैठे हुए थे। उसी समय देशके एक प्रसिद्ध श्रीमन्त व्यक्ति श्रीमालवीयजी महाराजके दर्शनार्थ आये। कुछ देर बाद जब श्रीभाईजी श्रीमालवीयजीको प्रणाम करके बिदा होने लगे, तब श्रीमन्त महोदयने उनसे कहा— भाईजी! आप रुकियेगा, आपसे कुछ बात करनी है।

श्रीभाईजी बाहर रुक गये। थोड़ी देर बाद वे सज्जन बाहर आये और श्रीभाईजीको बिल्कुल एकान्तमें ले गये। फिर वे दोनों एक पेड़के नीचे बैठ गये। बैठते ही श्रीमन्त महोदयके नेत्रोंसे

अश्रुधारा प्रवाहित हो चली। श्रीभाईजी इसका कारण नहीं समझ पाये। उन्होंने सोचा कि अभी ये शान्त हो जायेंगे तो बतलायेंगे, पर वे रोते ही रहे। वे लगभग पौन घंटेतक रोते रहे होंगे। उनकी इस दयनीय दशाको देखकर श्रीभाईजी तो अवाक् थे। खूब रो लेनेके पश्चात् जब उनका मन कुछ हल्का हुआ, तब उन्होंने कहा– भाईजी ! मैं वर्षोंसे घुट रहा था। कोई ऐसा स्वजन ही नहीं मिला, जिसके सामने दो आँसू भी गिरा सकूँ। आपके स्नेहकी एवं आत्मीयताकी बार-बार स्मृति होती थी, पर आपसे भेंट ही नहीं हो पायी। आज आपके सामने रोकर अपने हृदयका भार हल्का किया है।

पीछे उन श्रीमन्त महोदयने श्रीभाईजीको अपने दुःखके कारण विस्तारपूर्वक बतलाये। उसे सुनकर श्रीभाईजी तो आश्चर्यचकित रह गये कि बाहरसे इतने सम्पन्न और इतने सुखी दिखलायी देने वाले इन महानुभावके हृदयमें दुःखका कितना भीषण ज्वालामुखी पर्वत धधक रहा है। श्रीभाईजीने उन्हें बड़े ही प्यार भरे शब्दोंमें सान्त्वना दी और उनकी समस्याओंका समाधान बतलाया। श्रीभाईजीकी बातोंसे उन्हें बड़ा संतोष हुआ। वे बोले– भाईजी, मैं आपकी बातोंके अनुसार चलनेकी चेष्टा करूँगा। सचमुच आपने मेरे दुःखके हेतुओंका बड़ा ही सरल समाधान बता दिया है।

इस घटनासे सहज पता चल जाता है कि श्रीभाईजी लोगोंके कितने और कैसे विश्वासपात्र थे। ■

आ. श्रीचन्दाबाई ढाँढनिया

[१] प्रथम परिचय, प्रथम दर्शन, प्रथम पत्र

मेरे पिताजी राजस्थानके रामगढ़के निवासी थे। एक बार पूज्य श्रीभाईजी रतनगढ़से रामगढ़ सत्संगके लिये आये। तब मेरी आयु लगभग दस-ग्यारह वर्षकी रही होगी। उनके सत्संगमें मेरा बड़ा भाई गया। जब वह वहाँसे लौटकर आया तो श्रीभाईजीके प्रवचनकी बड़ी सराहना करने लगा। उस सराहनाको सुनकर बहिनके नाते मैंने अपने भाईको बड़ा उलाहना दिया कि तुम मुझे भी अपने साथ क्यों नहीं ले गये। मुझे इस बातका बड़ा खेद था कि एक सुन्दर अवसर मैं चूक गयी। यही श्रीभाईजीका मेरे लिये प्रथम परिचय था और मैं मन-ही-मन सोचने लगी कि क्या कभी मुझे भी श्रीभाईजीके दर्शन हो पायेंगे।

बड़ी होनेपर भागलपुरके रायबहादुर श्रीलोकनाथप्रसादजी ढाँढनियाके परिवारमें उनकी पुत्र-वधूके रूपमें मेरा प्रवेश हुआ। हमलोग अपने पूज्य श्वसुरजीको बाबूजी कहा करते थे और उनसे मुझे अपार वात्सल्य मिला। वे सदा मुझे 'बेटा' कहकर पुकारा करते थे। घरमें अनुशासन और पर्दा बहुत अधिक था, अतः घरसे बाहर निकलनेकी रंचमात्र आशा नहीं थी। हाँ, एक बात अवश्य थी। मेरे बाबूजीकी पूज्य श्रीसेठजी (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) में बड़ी श्रद्धा थी और भजन-परायण जीवनके प्रति महत्त्व-बुद्धि होनेके कारण वे श्रीसेठजी तथा श्रीभाईजीकी पुस्तकें तथा 'कल्याण' पत्रिका पढ़नेकी प्रेरणा सदा दिया करते थे। वे श्रीसेठजीके सत्संगका लाभ उठानेके लिये सदा उत्सुक रहा करते थे और अवसर मिलते ही वे सत्संगके लिये

श्रीसेठजीके पास जाया करते थे। सन् १९२७ ई. में श्रीभाईजीको श्रीसेठजीकी उपस्थितिमें जब जसीडीहमें भगवान श्रीविष्णुके दर्शन हुए थे, उस समय बाबूजी भी वहाँ थे। उस समय श्रीसेठजी और श्रीभाईजी भोजनमें तीन वस्तु ही लिया करते थे, अतः बाबूजी भी तीन ही वस्तु थालीमें परोसवाया करते थे। बाबूजी श्रीसेठजीके सत्संगके लिये स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) भी जाया करते थे और दो बार मुझे भी ले गये थे।

जब बाबूजी तीसरी बार सत्संगके लिये मुझे स्वर्गाश्रम ले गये, उस समयकी बात है। श्रीसेठजीके सत्संगमें दो-तीन सप्ताह रहनेके बाद जब बाबूजीने भागलपुर वापस जानेका कार्यक्रम बना लिया, तभी ज्ञात हुआ कि श्रीभाईजी चार-पाँच दिन बाद सत्संगके लिये स्वर्गाश्रम आने वाले हैं। मेरी बड़ी चाह थी कि हमलोग एक सप्ताह और ठहर जायें, जिससे श्रीभाईजीका दर्शन एवं उनका प्रवचन दोनोंका लाभ मिल सके। बचपनकी उस पुरानी चाहके भी पूर्ण होनेका यह एक अच्छा अवसर था, अतः मैंने बाबूजीसे एक सप्ताह और ठहरनेके लिये कहा। मेरी बात सुनकर उन्होंने उत्तर दिया— नहीं बेटा। यह नहीं होगा। अब भागलपुर जानेका कार्यक्रम बन चुका है। इसको नहीं बदला जा सकता।

इतना कहते-कहते वे तो श्रीसेठजीके पास चले गये, पर इस उत्तरसे मेरे मनमें अपार व्यथा उमड़ आयी और वह व्यथा उमड़-उमड़कर बहने लगी आँसुओंके रूपमें। कमरेके एकान्तमें बैठी हुई रो-रो करके भगवानसे प्रार्थना करती हुई मैं अपने मनकी कसक उन्हें सुनाने लगी। मुझे क्या पता किं इसमें कितना समय बीत गया। थोड़ी देर बाद बाबूजी आये और मुझे सुनाकर कहने लगे— बेटा ! ले, तेरे मनकी बात हो गयी। मैं अभी श्रीसेठजीके पास गया था और वे कहने लगे कि चार-पाँच दिनमें हनुमान गोरखपुरसे सत्संगके लिये आने वाला है, अतः लोकनाथजी ! आप कुछ दिनके लिये और ठहर जाइये। श्रीसेठजीकी बात टालना मेरे लिये उचित नहीं है, अतः अब श्रीभाईजीके आनेतक अपने लोगोंको ठहरना ही है।

भगवानने मेरी प्रार्थना सुन ली और ठहरनेकी बात सुनकर मुझे जितनी प्रसन्नता हुई, वह बतला सकना सम्भव नहीं। चार-पाँच दिन बाद श्रीभाईजी स्वर्गाश्रम आये और बाबूजीसे मिलने हमारे कमरेपर भी आये। बाबूजीने श्रीभाईजीसे कहा— पहले आप इससे मिल लें। यह तो आपके दर्शनके लिये बहुत ही रो रही थी।

तुरन्त एकान्तमें मुझे श्रीभाईजीसे मिलनेका अवसर मिल गया। महाभागवत श्रीभाईजीसे भला क्या पर्दा ? मैंने संकोच रहित होकर श्रीभाईजीके पावन चरणोंपर मस्तक रखकर प्रणाम किया। उनका दर्शन प्राप्त करके मेरे आनन्दकी सीमा नहीं थी। श्रीभाईजीने पूछा— बोलो ! क्या पूछना चाहती हो ?

मैं सरलमति भला क्या जानूँ कि ऐसे महापुरुषोंसे कैसे बात करनी चाहिये ? मैं सरल ढंगसे कह बैठी— पूज्य बाबूजी कहते हैं कि आपको जसीडीहमें भगवानके दर्शन हुए थे, सो भगवानके दर्शनकी बात मुझे भी बतलाइये।

श्रीभाईजी भी सहज ढंगसे कहने लगे— *हाँ, वहाँ मुझे श्रीविष्णुभगवानके दर्शन हुए थे और अब भी होते हैं।*

इतना कहते ही उनके नेत्रोंसे ऐसा प्रकाश निकला कि उसका वर्णन हो ही नहीं सकता।

इसके बाद श्रीभाईजी इससे सम्बन्धित कई बातें बड़े स्वाभाविक रीतिसे बतलाते चले गये। उनके श्रीमुखसे इस प्रसंगको सुनकर मुझे तृप्ति ही नहीं होती थी। उनका भगवानपर विश्वास, उनके बोलनेकी मिठास, उनके व्यवहारकी सरलता और उनके स्वभावकी मधुरताको देखकर मन बरबस उनके श्रीचरणोंपर न्योछावर होता चला गया। स्वर्गाश्रमकी इस यात्रामें और भी कई बार श्रीभाईजीसे मिलनेका अवसर मिला और जब-जब अवसर मिला, तब-तब मन अधिकाधिक उनके प्रति झुकता चला गया।

लगभग एक सप्ताह बाद जब हमलोग स्वर्गाश्रमसे भागलपुर जाने लगे तो हमें विदाई देनेके लिये तथा नावपर चढ़ानेके लिये श्रीभाईजी घाटपर आये। नावपर चढ़ते समय मैंने श्रीभाईजीको मन-ही-मन प्रणाम किया। श्रद्धेयको प्रणाम करते समय मन इतना भाव-विभोर हो रहा था कि थोड़ी असावधानी हो गयी और एक बार पैर आगे रखते समय लड़खड़ा गया। पैरमें काफी चोट आयी और पीड़ा आरम्भ हो गयी परंतु अपने माँ-बाबूजीसे बहुत संकोच होनेके कारण मैंने उनसे कुछ कहा नहीं। मैंने मन-ही-मन यह भी मान लिया कि किसीने मेरे लड़खड़ानेको देखा ही नहीं। यदि कोई देख लेता तो वह मुझ कुल-वधूके बारेमें न जाने क्या सोचता। नावसे हमलोग गंगाजीके पार उतरे, पर पैरकी पीड़ा बढ़ती ही जा रही थी। हरिद्वार पहुँचते-पहुँचते पैरमें बहुत सूजन आ गयी। इससे बाबूजीको बड़ी विकलता हुई और उन्होंने हरिद्वारमें ही डाक्टरको बुलवाकर मेरा पैर दिखलाया। भागलपुर आनेके बाद भी एक-डेढ़ मासतक पैरका कष्ट भोगना पड़ा। भागलपुर पहुँचनेपर मुझे श्रीभाईजीका पत्र मिला, जिसमें बड़ी चिन्ता व्यक्त की गयी थी मेरे पैरके लड़खड़ानेके बारेमें। घाटपर मेरे पैरके लड़खड़ानेको उनकी पैनी दृष्टिने देख लिया था। मैं तो यह मान बैठी थी कि किसीने देखा ही नहीं होगा, पर मुझे आश्चर्य हो रहा था श्रीभाईजीकी पैनी दृष्टिपर। क्या उनकी दृष्टि इतनी पैनी है कि उन्होंने एक क्षणमें देख लिया मेरे लड़खड़ाने को ? इसीके साथ-साथ मेरे कष्टका अनुमान भी उन्होंने कर लिया ! श्रीभाईजीने पत्रमें जितनी चिन्ता, जितनी सहानुभूति और जितनी आत्मीयता लिखी थी, वह मेरे लिये एक अमिट स्मृति है, मनपर एक स्थायी छाप है। समय बीत गया, पर उस समयकी बात यादके रूपमें सदा मनपर छायी रहती है। श्रीभाईजीकी वह आत्मीयता क्या कभी भुलायी जा सकती है ?

[२] भात भरनेका निमन्त्रण

सम्भवतः सन् १९६३ ई. की बात है। मेरे मझले पुत्र चि. नरेशके विवाहकी तिथि निश्चित हो गयी। प्रिय नरेश बड़ा संस्कारी बालक है। जब यह दो-तीन वर्षका बालक था, तब यह खेलते-खेलते तिमँजिले मकानकी खिड़कीसे अचानक बाहर नीचेकी ओर गिर पड़ा। जिस मकानमें हमलोग सपरिवार रहते थे, उस मकानके ठीक नीचे बर्छीनुमा रेलिंग लगी थी। नीचे गिरते ही हमलोगोंके होश गुम हो गये कि पता नहीं, उस बालकपर क्या बीती होगी। सीढ़ीसे जल्दी-जल्दी उतरकर उसे सँभाला गया। मामूली क्या, अत्यन्त साधारण खरोंचके अलावा उसे कहीं तनिक भी चोट नहीं आयी थी। उससे हमलोगोंने पूछा– क्या तुमको कहीं चोट लगी है ?

प्रिय नरेशने कहा– *माँ ! मुझे कहीं भी कुछ भी चोट नहीं लगी और माँ ! मुझे लगती कैसे, जब मुझको एक छोटेसे लड़केने अपनी गोदमें रोक लिया। उसके काले-काले घुँघराले बाल बड़े*

चमक रहे थे। आँखोंकी चमक और भी न्यारी थी। पीले-पीले कपड़े पहने हुए वह बड़ा ही प्यारा लग रहा था। उसकी कमरमें धोतीके पास एक वंशी भी चमक रही थी।

प्रिय नरेशके मुखसे तोतली भाषामें यह वर्णन सुनकर हमलोगोंको अपार सुख मिल रहा था और यह देखकर हमलोगोंको अपार आनन्द भी हो रहा था कि भगवान श्रीकृष्णकी इस बालकपर असीम कृपा है, जो उन्होंने स्वयं पधारकर इसके जीवनकी रक्षा की।

इसी संस्कारी पुत्रके बड़े होनेपर जब इसकी विवाह-तिथि निश्चित हो गयी तो बहिनके नाते भात भरनेके लिये पूज्य श्रीभाईजीको न्योता देना ही था। प्रिय नरेशके पिताजी और मैं, हम दोनों वाराणसीसे गोरखपुर गये और श्रीभाईजीको निमन्त्रण दिया। श्रीभाईजीने बड़े प्रसन्न मनसे वह निमन्त्रण स्वीकार किया। इसके बाद हमलोग पूज्य बाबाके पास गये। यह एक प्रकट सत्य है कि पूज्य बाबा श्रीभाईजीके साथ आयेंगे ही, इसके बाद भी प्यारकी प्रबलताने अनुरोध करनेके लिये विवश कर दिया और उन्हें भी विवाहके अवसरपर पधारनेके लिये निमन्त्रण दिया। पूज्य बाबाने भी बड़े प्रसन्न मनसे निमन्त्रण स्वीकार किया। श्रीभाईजी एवं पूज्य बाबाकी प्रसन्न स्वीकृतिसे हमदोनोंको बड़ी प्रसन्नता हुई और प्रारम्भमें ही यह प्रसन्न स्वीकृति एक अति श्रेष्ठ शुभ शकुन था। बड़े प्रसन्न मनसे हमदोनों गोरखपुरसे वाराणसी लौट आये।

दिन जाते क्या देर लगती है। विवाहकी तिथि समीप आ गयी और इस मांगलिक अवसरपर उपस्थित होनेके लिये गोरखपुरसे समाचार भी आ गया कि पूज्य श्रीभाईजी और पूज्य बाबा अमुक दिन प्रातःकाल ट्रेनसे वाराणसी आनेवाले हैं। मेरी बड़ी चाह थी कि उनका स्वागत करनेके लिये मैं स्टेशन जाऊँ, पर जानेके लिये घरवालोंने अनुमति नहीं दी। अनेक वैवाहिक नेगचारोंको सम्पन्न करनेका कार्य-भार अधिक होनेके कारण मुझे स्टेशन जानेसे रोक दिया गया। स्टेशन जानेके लिये मेरे मनमें बड़ी आतुरता थी, पर रोक दिये जानेसे मन आकुलतासे भर उठा। इसके बाद भी मैंने किसी प्रकारसे अपने मनको समझा लिया और मैं स्टेशन नहीं गयी।

पूज्य श्रीभाईजी और पूज्य बाबा निश्चित तिथिको निश्चित समयपर वाराणसी आये और उन्हें गायघाट स्थित डालमिया कोठीमें ठहरा दिया गया। उनके निवासकी व्यवस्था डालमिया कोठीमें ही की गयी थी। मेरे मनमें आया कि भले, मुझे स्टेशन नहीं जाने दिया गया, पर मैं डालमिया कोठी जाकर पूज्य श्रीभाईजी और पूज्य बाबाके दर्शन कर आऊँ। ज्यों ही मैंने डालमिया कोठी जानेकी इच्छा व्यक्त की, वहाँ भी मुझे जानेसे रोक दिया गया और रोका गया वैवाहिक कार्योंका विस्तार बताकर। वैवाहिक कार्योंका आधिक्य चाहे जितना हो, पर इस बारका प्रतिबन्ध मुझे बड़ा अप्रिय लगा। इतना अधिक अप्रिय लगा कि मन पूर्णतः खिन्न हो गया और मैं अपने ऐकान्तिक पूजा घरमें बैठकर आराध्यके सामने रोने लगी। आँसुओंका प्रवाह रुक ही नहीं रहा था। यह प्रतिबन्ध भी भला क्या माननीय है, जो संत-दर्शनमें बाधक सिद्ध हो? अबलाका बल अश्रु ही है। मेरा हृदय श्रीभाईजीके दर्शनके लिये छटपटा रहा था और झरझर आँसू गिर रहे थे। मैं अनुमान लगाती हूँ कि वे करुणासागर आराध्य मेरे आँसूओंको देखकर अवश्य पसीज गये होंगे। उसी समय मेरी बहिन श्रीसावित्रीबाई सेकसरिया पूजाघरमें आयी और मुझे रोते देखकर उसने सारी स्थितिका अनुमान लगा लिया। वह तुरन्त डालमिया कोठी गयी और वहाँ उसने श्रीभाईजीसे कहा— आप स्टेशनसे उसके पास नहीं जाकर सीधे डालमिया

कोठी चले आये और वह वहाँ बैठे-बैठे अपने आँसू बहा रही है।

यह सुनते ही श्रीभाईजी डालमिया कोठीसे चल दिये और मेरे घरपर मेरे पास आये। उनको देखकर मैं और भी फफक पड़ी। वे बड़ी देरतक मेरे पास बैठे रहे और मुझे सहलाते रहे। बार-बार मेरी पीठपर हाथ फेरकर वे समझाते रहे और मुझे धीरज देते रहे। सचमुच उनकी वाणी और उनके स्पर्शमें कोई जादू ही रहा होगा। उसीका प्रभाव था कि मनकी सारी खिन्नता न जाने कहाँ चली गयी और मनमें भर गयी असीम मधुरता।

इन पुरानी बातोंकी अब स्मृति आते ही बार-बार यही भाव मनमें आता है कि उन जैसा स्नेह तो वे ही दे सकते थे। जैसा स्नेह उन्होंने दिया, उसके मिठासकी याद आते ही उनके द्वारा रचित पदकी कुछ पंक्तियाँ याद आने लगती हैं।

स्याम - सो साँचो स्नेही कौन ?
को चित देइ सुनै सब मन की, मन की राखै कौन ?
को मो दृगन सलिल-कन देखत ही ह्वै जाय अधीर।
को निज कर सौं पौंछि अश्रु-जल, सुहृद बँधावे धीर॥
कोमल हाथ पीठ पर फेरै, धीरज दै पुचकारै।
मम आसा-लतिका की जड़ में मधुर अमी-रस ढारै॥

उस प्रसंगको बताते-बताते ऐसे भाव उमड़े कि मैं बीचमें ही श्रीभाईजीके स्नेहकी बात कहने लग गयी। मुझको सान्त्वना देनेके बाद श्रीभाईजी परिवारके अन्य लोगोंसे व्यक्तिगत रूपमें मिले और फिर वे डालमिया कोठी चले गये।

अपराह्न कालमें मैं पूज्य श्रीभाईजीको 'भात' का निमन्त्रण देनेके लिये गयी। गोरखपुरमें तो मौखिक रूपसे कहा था, पर अब तो वैवाहिक नेगचारके रूपमें विधिवत निमन्त्रण देना था। पूज्य श्रीभाईजीने निमन्त्रण स्वीकार किया। इसके बाद मैं पूज्य बाबाके पास गयी और उनसे प्रार्थना की– बाबा! मैं तो आपकी बहिन हूँ और आपके लिये भात भरनेका निमन्त्रण है।

पूज्य बाबाने कहा– हाँ बहिनी! तू मेरी बहिन है और मेरी ओरसे तुमको भातकी चूनरी ओढ़ायी जायेगी।

इतना कहकर पूज्य बाबाने उसी समय पूज्या माँको और पूज्य श्रीभाईजीको अपने पास बुलवाया। जब वे आ गये तो पूज्य बाबाने कहा– मैया, एक चूनरी तो तू गोरखपुरसे तैयार करके ले आयी हो, जिसे श्रीभाईजी ओढ़ायेंगे, पर इसके अलावा एक और चूनरी अभी बाजारसे मँगवाकर तैयार करवा दे। वह चूनरी मेरी ओरसे मेरे प्रतिनिधि बनकर श्रीभाईजी चन्दा बहिनको ओढ़ायेंगे।

माँसे इतना कहकर फिर पूज्य बाबाने मुझसे कहा– चन्दा बहिनी! श्रीभाईजीको दो टीका करना, एक उनके लिये और एक मेरे निमित्तसे।

मैंने पूज्य बाबासे कहा– बाबा! ऐसा ही होगा।

इस समय मेरे आनन्दकी सीमा नहीं थी। पूज्या माँका उत्साह, पूज्य बाबाकी उमंग और पूज्य श्रीभाईजीका उल्लास देखकर मेरी प्रसन्नता पराकाष्ठापर थी। शामको भात भरनेके लिये पूज्य श्रीभाईजी मेरे घर पधारे। मांगलिक गीतोंसे घरका द्वार गुञ्जित हो रहा था। मैंने

श्रीभाईजीको टीका किया और श्रीभाईजीने मुझे चूनरी ओढ़ायी। जब श्रीभाईजीका नेगचार हो गया तो फिर श्रीभाईजीने कहा— बाई! एक टीका बाबाके निमित्तका करो।

वह तो मुझे करना ही था। टीका करनेके बाद श्रीभाईजीने पूज्य बाबाके प्रतिनिधिके रूपमें चूनरी ओढ़ायी। मैं रह-रह करके अपने सौभाग्यकी सराहना कर रही थी। फिर तो सारे वैवाहिक कार्य एक-एक करके सम्पन्न हुए और लगभग सभी मुख्य कार्योंमें श्रीभाईजी उपस्थित रहे। विवाह जैसे मांगलिक कार्यके अवसरपर परम सिद्ध महान संत पधारें और वह भी एक भाईके रूपमें पधारें, उस कार्यको भली प्रकार सम्पन्न होना ही था। विवाहोत्सवकी व्यस्तता और जिम्मेदारी कम नहीं होती, प्रतिक्षण कोई-न-कोई बात सामने आती ही रहती है, साँस लेनेको फुरसत नहीं मिलती, पर इस सारी घनी व्यस्ततामें एक भाव आदिसे अन्ततक मेरे मनपर छाया ही रहा कि प्रिया-प्रियतम श्रीराधामाधवके लीलारसमें नित्य निमग्न रहनेवाले सिद्ध संत श्रीभाईजीका मेरे पुत्रके विवाहमें शुभागमन हुआ और सभी मुख्य मांगलिक अवसरोंपर वे उपस्थित रहे, यह कितना महान सौभाग्य है। उनके प्यारको याद कर-करके मेरा रोम-रोम पुलकित हो रहा था। *'किमि कहि जात मोदु मन जेता'* ।सचमुच मनमें अपार आनन्द उमड़ रहा था श्रीभाईजीके अपार स्नेहको देखकर। उनके आध्यात्मिक व्यक्तित्वकी अमित महत्ता सर्वजन-वन्दनीय है, परंतु उस महत्ताको भुलाकर, प्रियतामें डूबकर और समस्तरतापर आकर उन्होंने मुझ साधारण-सी बहिनके अनुरोधको आदर दिया और *'भूल उच्चता भगवत्ता सब'* वे मेरे द्वारपर पधारे, इस भावानन्दमें मन सराबोर था और उसकी स्मृति आज भी सराबोर कर देती है।

[३] हृदय-परिवर्तन

सन् १९६९ ई. की बात है। भागलपुरके वैद्यराज पं. श्रीछेदीप्रसादजी शुक्लके ज्येष्ठ पुत्र शिवशंकरके प्राण संकटमें पड़ गये। वैद्यराज तो स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) गये हुए थे। उनकी अनुपस्थितिमें शिवशंकरका अपने पड़ोसी हलवाईसे छोटी-सी बातपर झगड़ा हो गया। हलवाई और वैद्यजीके घरके बीचमें एक सकरी गली है और वह गली भी वैद्यजीके हककी जमीनपर है। हलवाई उस गलीमें अपने मकानका एक दरवाजा खोलना चाहता था। इसपर शिवशंकरने उसे मना किया। बात-बातमें बात बढ़ गयी और बात इतनी अधिक बढ़ गयी कि भीषण रोषमें भरकर हलवाईके पुत्रने भारी ईंटके टुकड़ेसे शिवशंकरपर प्रहार किया। वह ईंट शिवशंकरके सिरपर लगी और खूनका फव्वारा फूट चला।

चारों ओर तहलका मच गया। थानेमें रिपोर्ट लिखा दी गयी। पुलिसने उस हलवाईके पुत्रको गिरफ्तार करके जेलमें डाल दिया। उस हलवाईके अन्य पुत्रोंके नामसे वारंट जारी हो गये। उस हलवाई-पुत्रके क्रोधी स्वभावको देखकर लोग उससे बचते ही रहते थे। जेलसे उसने धमकी देते हुए कहलवाया— जेलसे बाहर आनेके बाद मैं शिवशंकरको देख लूँगा। अब उसके सिरपर उसकी मौत नाच रही है।

ईंटके प्रहारसे शिवशंकरके सिरमें गहरी चोट आयी थी। सिरपर टाँके लगवाये गये। क्रमशः सिरका घाव भरने लगा। सिरका घाव तो भर रहा था, पर मनका घाव दिन-प्रति-दिन गहरा और बढ़ता चला जा रहा था। शिवशंकरके मनमें भीषण प्रतिहिंसा जाग उठी और उसने भी

हलवाई-पुत्रसे निपटनेकी बात मनमें ठान ली।

मैंने इस विषम और विकट परिस्थितिकी बात पत्रमें लिखकर पूज्य श्रीभाईजीके पास स्वर्गाश्रम भेज दी और इस संकटसे उबार लेनेके लिये उनसे प्रार्थना की। श्रीभाईजीने तत्काल वैद्यजीको अपने पास बुलवाया और उनको घरकी सारी संकटपूर्ण परिस्थिति बतलायी। सारी बात सुनकर आस्तिक-मति वैद्यजीने श्रीभाईजीसे कहा– अवश्य ही परिवारवालोंसे श्रीराधारानी श्रीश्यामसुन्दरकी सेवा-पूजामें कोई त्रुटि हुई है और उसी देवापराधका यह कुपरिणाम है।

श्रीभाईजीने वैद्यजीसे कहा– आपको घरपर जाकर परिवारकी सुरक्षाकी व्यवस्था करनी चाहिये।

वैद्यजीने अपनी जनेऊ अपने हाथमें ले ली और हाथ जोड़कर अति दीन वाणीमें बोले– भाईजी ! वह सारी सुरक्षा तो आपके हाथमें है। मेरे हाथमें जनेऊ है और मैं शपथ पूर्वक कह रहा हूँ कि मैं तो आपके श्रीचरणोंपर पूर्णतः समर्पित हूँ। घरकी और परिवारकी सारी सँभाल आपके ऊपर है। आप ही हमारे माता-पिता और सखा-संरक्षक हैं। वही होगा, जो आप चाहेंगे, वही रहेगा, जिसे आप रखेंगे और आप वही करेंगे जो सबके लिये मंगलमय होगा। मैं तो पूर्णतः आपपर निर्भर हूँ। आप ही सारी बात सँभालेंगे और इस बालककी सुरक्षा भी आपके ही हाथमें है।

वैद्यजीके दैन्यकी सच्चाईसे श्रीभाईजीका हृदय द्रवित हो उठा। श्रीभाईजीने वैद्यजीको सान्त्वना देते हुए कहा– आप निश्चिन्त रहें। सब ठीक हो जायेगा। आया हुआ यह संकट टल जायेगा। आप तनिक चिन्ता न करें। आप यह बतलाइये कि आपके घरमें कितने द्वार हैं ?

वैद्यजीने कहा– दो।

वैद्यजी इतने सरल स्वभावके थे कि वे अपने घरके द्वारकी संख्या भी सही-सही नहीं बतला सके। श्रीभाईजी बार-बार द्वारकी संख्या पूछें और वैद्यजी बार-बार दो बतलायें। तब पूछना बन्द करके श्रीभाईजीने एक ही मन्त्र चार कागजपर लिखकर दिया और कहा– घरके तीन द्वारपर ये मन्त्र-लिखित तीन कागज चिपका दीजियेगा तथा चौथा कागज उस गलीमें चिपका दीजियेगा, जिस ओर वह हलवाई दरवाजा खोलना चाह रहा है।

वे चारों कागज वैद्यजीने श्रीभाईजीसे प्राप्त करके अपने पास सुरक्षित रख लिये। इसके बाद श्रीभाईजीने उनसे कहा– इस मन्त्रकी ताबीज बनवाकर आप धारण कर लीजियेगा।

वैद्यजी इन सब बातोंको बहुत ध्यान पूर्वक सुन रहे थे। इतनी सारी बात कह चुकनेके बाद श्रीभाईजीने उनसे पुनः कहा– आप अपने घरपर श्रीमद्भागवत महापुराणके सात सप्ताह-पाठ सात पण्डितोंसे करवा दें और पाठ करने वाले सातमेंसे एक आप भी रहेंगे। सातों पाठ एक साथ हों और श्रीठाकुरजीके सामने हों।

इतना सुनते ही वैद्यजी चौंक पड़े। वे चौक पड़े व्यय और व्यवस्थाकी बातको सोचकर कि कैसे सब हो पायेगा। उन्होंने बड़ी दीनतापूर्वक कहना आरम्भ किया– भाईजी ! सात भागवत-सप्ताह करवानेमें जो व्यय होगा, उसका प्रबन्ध मैं ब्राह्मण भला कैसे कर पाऊँगा ? यह तो मेरे लिये बड़ा कठिन है।

श्रीभाईजीने आश्वासन एवं प्रोत्साहन देते हुए कहा— भगवत्कृपासे कोई कार्य कठिन नहीं है। अकारण सुहृद भगवानका सौहार्द सारी कठिनाइयोंको दूर कर दिया करता है। आप घरपर श्रीमद्भागवतका सात सप्ताह-पाठ करवायें। आप विश्वास करें, भगवान इसकी सारी व्यवस्था स्वतः करेंगे।

वैद्यजीने श्रीभाईजीके कथनको आदेशवत् स्वीकार कर लिया। श्रीभाईजीके स्नेहको, उनकी आत्मीयताको देख-देख करके वैद्यजीका हृदय भीतर-ही-भीतर गला और बहा जा रहा था। इसके बाद श्रीभाईजी वैद्यजीको लेकर माँजी (अर्थात् बाई सावित्रीकी माताजी) के पास गये और उसे सारी बात बतलायी। माँजीने वैद्यजीको एक बढ़िया कम्बल भेंट स्वरूप प्रदान किया। इस प्रसादको पाकर वैद्यजी इतने भाव विभोर हो उठे कि कम्बल ओढ़कर वहीं नृत्य करने लग गये। इसके बाद माँजीने २५१ रुपये प्रदान किये। रुपयोंको देखते ही वैद्यजीने श्रीभाईजीसे कहा— भाईजी ! मुझे रुपये नहीं चाहिये। मुझे केवल-केवल आपका चरणाश्रय चाहिये। आपका अनुग्रह ही मेरे जीवनकी वास्तविक निधि है।

श्रीभाईजीने कानसे लगकर धीरेसे कहा— यह इसका आशीर्वाद है। आप इसे स्वीकार कर लें।

अब अस्वीकृतिके लिये स्थान ही कहाँ था ? फिर माँजी और श्रीभाईजीको प्रणाम करके वैद्यजी अपने घर भागलपुर आये। श्रीभाईजीने जैसे-जैसे कहा था, वैसे-वैसे मन्त्रको द्वारपर-दीवालपर चिपकाया और ताबीज बनवाकर गलेमें धारण किया। अब वैद्यजी सोचने लगे कि श्रीमद्भागवत सप्ताहके पाठकी व्यवस्था कैसे हो ? वे इस बारेमें सोच-विचार कर ही रहे थे कि बिना बुलाये छः भागवती पण्डित अपने-आप एक-एक करके आ गये। उनसे बात करते ही भागवत-सप्ताहकी बात तय हो गयी। बड़े उत्साहके वातावरणमें श्रीमद्भागवतका सप्ताह-पाठ घरमें श्रीठाकुरजीके सामने आरम्भ हो गया। पाठानुष्ठानमें छः तो वे भागवती पण्डित और एक स्वयं वैद्यजी थे, इनसे अलग एक और थे जप करने वाले पण्डितजी।

पाठानुष्ठानके जब छः दिन बीत गये तो उस रात्रिमें लगभग दो-अढ़ाई बजेके समयकी बात है। किसीने वैद्यजीके घरका दरवाजा खटखटाया। घरवालोंके मनमें तुरन्त कुशंकाएँ जाग उठीं कि इस रातके समय कौन आ पहुँचा। उपद्रव-शान्तिके लिये तो यह सप्ताह-पाठ हो रहा है और इस असमयमें दरवाजेका खटखटाया जाना क्या किसी भावी अमंगलका संकेत है ? मनमें कुशंकाएँ उठने लगीं कि न जाने कौन व्यक्ति किस उद्देश्यसे आधी रातके बाद आकर दरवाजा खटखटा रहा है। उस व्यक्तिने पुनः दरवाजा खटखटाया। सारे दिन भागवत-पाठमें संलग्न रहनेके कारण थके-माँदे वैद्यजी अपनी कच्ची नींदसे उठे और पूछा— कौन है ?

वह व्यक्ति अपना परिचय न देकर बार-बार दरवाजा खोल देनेके लिये अनुरोध कर रहा था। इससे मनमें अशुभ आशंकाएँ और अधिक उत्पन्न हो रही थीं। अन्य लोग चाहे जो सोचे, वैद्यजीकी सच्ची भावना थी कि—

जाको राखै साइयाँ मार सके ना कोय।
बाल न बाँका कर सके जो जग बैरी होय॥

'मंगल भवन अमंगल हारी' भगवानपर अटूट विश्वास रखने वाले वैद्यजीने तुरन्त अपने

घरका दरवाजा खोल दिया। बाहर खड़ा था हवाई अड्डेका कोई अधिकारी और उसने अपना नाम विश्वम्भरप्रसाद शर्मा बतलाया। उसने वैद्यजीसे कहा— मैं भगवान शंकरके आदेशसे आपके पास आया हूँ। आपको मेरी चिकित्सा करनी है।

वैद्यजीने आगन्तुकसे कहा— मैं तो अब चिकित्सा करता नहीं। मैंने चिकित्सा-कार्य छोड़ दिया है।

आगन्तुक श्रीविश्वम्भरप्रसादजी शर्माने पुनः कहा— मैं आपके पास भगवान शंकरके आदेशसे ही आया हूँ और आपको मेरी चिकित्सा करनी चाहिये।

वैद्यजीने कहा— भगवान शंकरने जिस प्रकार आपसे कहा है, वैसे ही वे मुझे भी तो कह सकते हैं।

वैद्यजीकी बातको अनसुनी करते हुए आगन्तुक श्रीशर्माजी कहने लगे— मैं अन्यथा नहीं कहता। मैं सत्य कह रहा हूँ कि भगवान शंकरके आदेशसे ही मैं आपके पास आया हूँ। मेरी चिकित्सा तो बादमें होगी, अभी तो आप मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

इतना कहकर वे जो वस्तुएँ अपने साथ भेंट करनेके लिये लाये थे, उनको भेंट स्वरूप प्रदान करके उन्होंने साष्टांग प्रणाम किया और फिर वे चले गये। जब उन वस्तुओंको सँभाला गया तो सभी आश्चर्यमें डूब गये। सात पण्डितोंकी दक्षिणाके लिये सम्पूर्ण सामग्री वे रख गये थे। वैद्यजीको तो दक्षिणा लेनी नहीं थी, परंतु छः भागवती पण्डित तथा एक जपकर्ता पण्डित, इन सात पण्डितोंको प्रदान करनेके लिये आवश्यक सामग्री वैद्यजीके सामने थी। आवश्यक धोती-चादर वस्त्रादि तो थे ही, इसके अतिरिक्त सात जगह २५१ रूपये भी थे। सुपारी, जनेऊ, चित्ती कौड़ी, पीले रंगके चावलोंसे भरा भरतपुरी विशाल लोटा आदि-आदि सामग्रीको देखकर सभी कहने लगे— वे विश्वम्भरप्रसाद शर्मा नहीं आये थे, अपितु श्रीशर्माजीके आवरणमें स्वयं भगवान विश्वम्भर ही आये थे, उस भागवत-अनुष्ठानको समुचित पूर्णता प्रदान करनेके लिये। कृतज्ञ-हृदय भाव-विभोर वैद्यजी हाथ जोड़कर भगवानको बार-बार प्रणाम करने लगे। उनके नेत्रोंकी अविरल अश्रुधारा केवल कपोलोंको ही नहीं, उनके वस्त्रोंको भी भिगो रही थी। अब उनकी आँखोंमें नींद कहाँ? प्रातःकाल होते ही श्रीमद्भागवतके सप्ताहपाठका अन्तिम सातवाँ पाठ भी सानन्द एवं सोत्साह पूर्ण हुआ और फिर बड़े ही उत्साह एवं उल्लासके वातावरणमें सप्त-सप्ताह-पाठकी पूर्णाहुति हुई।

श्रीभाईजीने वैद्यजीसे जो-जो कहा था, वह सब-का-सब वैद्यजीने किया। वैद्यजीके मनमें आस्था पहले भी थी, अब और भी दृढ़ हो गई कि श्रीभाईजीकी कृपासे कोई अमंगल घटित होगा ही नहीं। ऐसी आस्थाके होते हुए भी अभी वातावरणका क्षोभ कहाँ शान्त हुआ था? अपने शिवशंकरके मनमें ही अभी प्रतिहिंसा एवं प्रतिशोधके भाव कहाँ ठण्डे पड़े? शिवशंकरको उसकी बड़ी बहिन श्रीरुक्मिणीबाईने समझानेका प्रयत्न किया, पर अपेक्षित फल सामने नहीं आ रहा था।

अब श्रीराधाष्टमी महोत्सव समीप था और इस निमित्तसे गोरखपुर जानेका कार्यक्रम बन रहा था। कई लोग आदरणीया श्रीरुक्मिणीबाईके साथ गोरखपुर जाने वाले थे। बाईने सोचा कि शिवशंकरको भी साथ ले चलकर श्रीभाईजीके समर्थ चरणोंमें डाल देना चाहिये और उनकी

कृपासे अवश्य ही शिवशंकरमें परिवर्तन आयेगा। पहले तो शिवशंकर गोरखपुर चलनेके लिये राजी नहीं हुआ, पर बाई द्वारा समझाये जानेपर वह चलनेके लिये तैयार हो गया।

कई लोग बाईके साथ भागलपुरसे गोरखपुर आये। गोरखपुर आकर बाई अपने दोनों भाई, बड़े शिवशंकर तथा छोटे रविशंकरको साथ लेकर श्रीभाईजीके कमरेमें गयी। श्रीभाईजी पलंगपर बैठे हुए थे। श्रीरुक्मिणीबाईको देखकर श्रीभाईजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। बाईने तथा अन्योंने श्रीभाईजीको प्रणाम किया। जब छोटे श्रीरविशंकरने श्रीभाईजीको प्रणाम किया तो उन्होंने रविशंकरके मस्तकपर अपना वरद हस्त रखा, पर बड़े शिवशंकरके प्रणाम करनेपर उसके मस्तकपर नहीं रखा। इससे बाईके मनमें संदेह हुआ कि क्या अभी शिवशंकरका जीवन संकट-ग्रस्त है। शिवशंकरके मस्तकपर अपना वरद हस्त रखनेके लिये बाईने अनुरोध भी किया तो श्रीभाईजीने उसे अनसुना कर दिया। बाई चाहती थी कि श्रीभाईजी अपना वरदहस्त शिवशंकरके मस्तकपर रख दें।

इसी बीच श्रीभाईजीने अपने पैर पलंगसे नीचे लटका दिये। तभी छोटे रविशंकरने पुनः उनके श्रीचरणोंपर माथा टेककर प्रणाम किया और बहुत देरतक प्रणाम करता रहा। रविशंकर तो अभी सात-आठ वर्षका बालक ही था। बहुत देरतक प्रणाम करते रहना रविशंकरकी भावमय स्थितिका परिचायक था। बाईने श्रीभाईजीसे कहा— आप इसके मस्तकपर अपने श्रीचरण रख दें।

श्रीभाईजीने तुरन्त अपने श्रीचरण उसके मस्तकपर रख दिये। रविशंकर आरम्भसे ही बड़े सात्त्विक स्वभावका था। बाईने श्रीभाईजीसे कहा— आप इसे संन्यासी बना दें।

श्रीभाईजीने कहा— संन्यासी नहीं, गृहस्थ-संन्यासी बनायेंगे। ऐसा जीवन हो, जो जगतमें रहकर भी जगतके प्रभावसे जल-कमलवत् दूर रहे।

रविशंकरके प्रति श्रीभाईजीकी यह बात सुनकर सभीको बड़ी प्रसन्नता हुई, परंतु बाईको इस बातसे बड़ी चिन्ता हो रही थी कि श्रीभाईजी शिवशंकरके प्रति बड़े उदासीन हैं। बाईने श्रीभाईजीसे एक बार और अनुरोध किया कि वे शिवशंकरके मस्तकपर अपना मंगलमय वरदहस्त रख दें। बाईकी बात सुनकर श्रीभाईजीने स्नान करके आनेके लिये कहा।

सभी उसी समय स्नानादिसे निवृत्त होनेके लिये चल दिये। शिवशंकर स्नान करके अपनी बड़ी दीदीके साथ श्रीभाईजीके पास आया। साथमें कुछ और भी आत्मीयजन थे। इस बार विचित्र बात यह हुई कि शिवशंकर श्रीभाईजीके पास बैठते ही रोने लगा। इधर तो वह रोता ही जा रहा था और उधर श्रीभाईजीकी मुखाकृति पहले तो गम्भीर हुई तथा गम्भीर होते-होते उग्र हो उठी। आँखें लाल-लाल हो गयीं। खुली-खुली चौड़ी-चौड़ी लाल-लाल आँखोंसे श्रीभाईजी कभी दायें, कभी बाँये, कभी इधर कभी उधर देखने लगे। जैसे गायें बैठ कर जबड़ा चलाती हुई जुगाली करती हैं, वैसे ही श्रीभाईजी भी करने लगे। श्रीभाईजीका ऐसा उग्र और भयावह रूप बाईने कभी देखा ही नहीं था। बाईको ऐसा लगा मानो श्रीभाईजीमें भगवान श्रीनृसिंहजीका आवेश हो गया हो। श्रीभाईजीके उस रौद्र रूपको देखकर, अन्यकी तो बात ही क्या, स्वयं बाई भी डर गयी। बाई नितान्त किं-कर्तव्य-विमूढ़ हो रही थी कि अब क्या किया जाय और यह नृसिंहावेश कैसे शान्त होगा। इसीमें लगभग आधा-पौन घंटा बीत गया। तभी श्रीभाईजीने जल

पीनेकी इच्छा व्यक्त की। पासमें बैठी हुई श्रीनर्मदीबाई भागकर श्रीरामसनेहीजीको कहनेके लिये गयी, पर वे मिले नहीं। जब श्रीनर्मदीबाई निराश होकर लौट आयीं तो बाईने उन्हींसे जल लानेके लिये कहा। नर्मदीबाई जलका गिलास और गमछा लेकर आयी। गमछेपर गिलास लेकर श्रीभाईजीने जल पीया और फिर गिलास और गमछा वापस कर दिया। इस समय एक और बात घटित हो गयी। ऐसा कभी होता नहीं, पर संयोगवशात् हो गया। श्रीभाईजीके अधरोंसे लार चू पड़ी और समीप बैठे हुए शिवशंकरके मस्तकपर चूती हुई लारकी एक-दो बूँदें गिर पड़ीं। इतना होते ही सारा दृश्य बदलने लगा। श्रीभाईजीका वह आवेश क्रमशः शान्त होने लगा। वह आवेश शीघ्र ही शान्त हो गया और उन्होंने शिवशंकरके मस्तकपर अपना वरद हस्त रखकर अपना अमोघ मंगलपूर्ण आशीर्वाद दिया– अब निर्भय और निश्चिन्त हो जावो। कोई भी तुमको हानि नहीं पहुँचा पायेगा।

ज्यों ही श्रीभाईजीने शिवशंकरके मस्तकपर अपना वरद हस्त रखा और मंगल आशीर्वाद दिया, बाईका मन प्रसन्नतासे भर गया। बाई पूर्ण आश्वस्त हो गयी कि शिवशंकर अब खतरेसे बाहर हो गया है। इतना ही नहीं, उसके मनमें उत्पन्न प्रतिहिंसाका भाव भी पूर्णतः दूर हो गया। मनके निश्चिन्त हो जानेसे बाई तथा उनके साथके अन्य लोग श्रीराधाष्टमी महोत्सवका आनन्द भलीभाँति ले सके। श्रीभाईजीने इन सभी लोगोंकी सुविधाका बड़ा ध्यान रखा। समय-समयपर सभीके खाने-पीने और रहनेके बारेमें पूछते रहते थे, जिससे उन सब लोगोंको कोई परेशानी नहीं हो।

अब श्रीराधाष्टमी महोत्सवके बादकी बात है। बाई श्रीभाईजीके पास बैठी हुई थी और शिवशंकरके प्राण-संकट वाली बात चल पड़ी। श्रीभाईजीने पूछा– क्या श्रीवैद्यजीने सात भागवतसप्ताह करवा ली ?

बाईने बताया– बड़ी सुन्दर रीतिसे वह अनुष्ठान पूर्ण हुआ है। इतना ही नहीं, आपने जो-जो करनेके लिये कहा था, वह सब पिताजीने किया है। वे तो आपके शुभाशीर्वादके सहारे परम निश्चिन्त हैं।

श्रीभाईजीने पूछा– तुम क्या चाहती हो ?

बाईने कहा– शिवशंकर और हलवाई-पुत्र, दोनोंके मन बदल जाय।

बाईकी बात सुनकर श्रीभाईजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। बाईके भावोंकी सराहना करते हुए श्रीभाईजी कहने लगे– *तुमने बड़ी सुन्दर बात कही। सच्चा बन्धुत्व और वास्तविक संतत्व इसीमें है। मनमुटाव रहनेसे मनमें अशान्ति बनी रहती है। झगड़ा तो प्रेम-भावके उत्पन्न होनेपर ही समाप्त होता है। तुम्हारी बात सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।*

सराहना करते-करते श्रीभाईजीने आश्चर्य मिश्रित वाणीमें बाईसे पूछा– क्या तुम उस हलवाई-पुत्रसे बात कर सकती हो ?

बाई ने कहा– क्यों नहीं कर सकती ? वह है तो हमारा पड़ोसी ही।

श्रीभाईजीने कहा– परस्परमें शत्रु-भाव उत्पन्न हो जानेपर बात थोड़ी सावधानीसे करनी पड़ती है।

बाईने कहा— वह मुझे शत्रु लगता ही नहीं। सदा ही मैंने उसके यहाँ मिठाइयाँ खायी है और सदा ही उससे बात होती रही है। मैं उससे बात कर सकती हूँ।

श्रीभाईजीने कहा— जब उसको बुलाकर बात करना तो पहले उसको प्रणाम करना, फिर शिवशंकरकी ओरसे क्षमा-याचना करना और इस रार-तकरारमें उसका जो भी खर्च हुआ हो, उससे अधिक उसे दे देना।

श्रीभाईजीकी सिखलायी-पढ़ायी हुई बाई गोरखपुरसे भागलपुर आयी और वैसे ही किया, जैसे श्रीभाईजीने कहा था। बाईने उस हलवाई-पुत्रको बुलाकर आदरपूर्वक बैठाया और उसको प्रणाम किया। जो प्रणाम करने योग्य है, उसी बाईको प्रणाम करते देखकर उस हलवाई-पुत्रका मन द्रवित हो उठा। इसके बाद बाईने उससे प्रेम पूर्वक विनम्र भाषामें कहा— भइया! मैं तेरी बहिन हूँ। गलती शिवशंकरकी है। मैं शिवशंकरकी गलतीके लिये तुमसे क्षमायाचना करती हूँ। शिवशंकर भी तो तुम्हारा ही भाई है और उसके प्राणोंके रक्षक भी तो तुम्हीं हो।

बाईके इन शब्दोंको सुनकर वह हलवाई-पुत्र इतना अधिक द्रवित हो उठा कि जिसकी कल्पना नहीं। उसने हाथ जोड़कर बड़े भाव भरे शब्दोंमें भागलपुरकी स्थानीय भाषामें बाईसे कहने लगा— यह तुम क्या कर रही हो? क्या कह रही हो? अब शिवशंकरके लिये भयकी कोई भी बात नहीं। उस समय मुझे क्रोध आ गया था और क्रोधमें मैंने ईंट चला दी थी, जो उचित नहीं था। शिवशंकर अपना ही है।

इस उत्तरको सुनकर बाईके आनन्द और आश्चर्यकी सीमा नहीं थी। बाई सोच भी नहीं सकती थी कि बात इतनी जल्दी बन जायेगी। बाई मन-ही-मन श्रीभाईजीको प्रणाम करने लगी, जिनकी कृपासे इस शुभ क्षणका दर्शन हुआ। बाईने पुनः हलवाई-पुत्रसे कहा— इस झगड़े-झंझटमें तुम्हारा बहुत खर्च हो गया होगा, वह सब तुमको ले लेना चाहिये।

अस्वीकृतिके रूपमें अपनी गर्दनको हिलाते हुए उस हलवाई-पुत्रने कहा— मेरे पास जो भी है, वह सब तुम्हारा ही तो है। भला क्या लेना और क्या देना?

बाईने उससे कहा— मैं जब श्रीराधाष्टमीके अवसरपर गोरखपुर गयी थी तो तुम्हारे बारेमें भी श्रीभाईजीसे बात हुई थी। श्रीभाईजीने कहा था कि यदि कभी कोई व्यक्ति क्रोधके आवेशमें कुछ भूल कर बैठे तो उस भूलके आधारपर मनमें शत्रुता रखना सर्वथा अनुचित है। सद्भावसे ही शान्ति होती है। वे तो तुम्हारे मंगलकी ही कामना कर रहे थे।

बाईके मुखसे इन बातोंको सुनकर वह हलवाई-पुत्र बड़ा प्रसन्न हुआ। थोड़ी देर बाद हलवाई-पुत्र चला गया, पर अपने मानस-परिवर्तनकी स्थायी छाप बाईके मनपर छोड़ गया। उसका यह मानस-परिवर्तन क्षणिक नहीं, स्थायी था। दो पड़ोसी परिवारोंका पारस्परिक वैमनस्य ऐसा समाप्त हो गया, मानो कभी शत्रु-भावका उदय हुआ ही नहीं था। इस आत्मीयताका सबसे बड़ा उदाहरण है विवाहका अवसर। जब-जब श्रीवैद्यजीके पुत्र-पुत्रियोंके विवाहका अवसर आया, तब-तब सभी अवसरोंपर विवाहकी सारी मिठाई उसी पड़ोसी हलवाईने बनायी और मिठाई बनाकर भी उसने पारिश्रमिक स्वरूप पैसा नहीं लिया। श्रीभाईजीकी सर्व-समर्थ कृपा-शक्तिके मंगलमय प्रभावसे दो परिवारोंका शत्रु-भाव किस प्रकारसे

आत्म-भावमें परिणत हो गया, उसका यह एक अद्‌भुत प्रसंग है।

[४] प्रातःकालकी बातचीत

एक बार हम कई बहिनें भागलपुरसे गोरखपुर आयीं। श्रीभाईजीने हम सभीके ठहरनेकी सुन्दर व्यवस्था की। प्रतिदिन ही हमलोगोंको श्रीभाईजीके पास बैठनेका अवसर मिलता। बैठनेपर सभी तरहकी बातचीत होती, कभी साधारण घर-गृहस्थीकी, कभी दैनिक पूजा-पाठकी और कभी दिव्य भावराज्यकी। बात चाहे किसी विषयकी हो, वह सदा परमानन्द ही देती और उससे जीवनमें प्रकाश मिलता। मुझे तो बार-बार सोचकर यह आश्चर्य भी होता कि अपने व्यस्त, केवल व्यस्त ही नहीं, महाव्यस्त दिनचर्यामेंसे हमलोगोंसे बात करनेके लिये वे इतना समय कैसे निकाल लेते थे। उनके निरवधि प्यारने, उनके छलछलाते वात्सल्यने हमलोगोंके संकोचको इतना अधिक दूर कर दिया था कि जब-तब दिनमें हमलोग उनके पास चली जाया करती थीं।

हमारे साथ आदरणीया श्रीरुक्मिणीबाई भी भागलपुरसे आयी हुई थीं। मध्य रात्रिके समय उनके पेटमें दर्द शुरू हो गया। अब आधी रातके समय दवा कहाँसे मिले ? दवा मिल सकती थी श्रीभाईजीके पास, पर वे तो सो रहे होंगे। उनको जगाना उचित नहीं। जो कुछ हो सकता था, वह उपचार किया गया, पर उदर-शूलसे बाई रातभर कष्ट पाती रहीं। प्रातःकाल मैं श्रीभाईजीको प्रणाम करने गयी तो बतलाया— कल बाईकी रात बड़ी मुश्किलसे कटी। उनके पेटमें दर्द हो गया था।

मेरी बात सुनते ही श्रीभाईजीने कहा— मेरे पास क्यों नहीं आ गयी ? मैं उसी समय दवा दे देता। व्यर्थ ही उसको रातभर कष्ट भोगना पड़ा।

मैंने विनम्र स्वरमें कहा— आधी रात हो चुकी थी। क्या उस समय आकर मैं आपको जगाती ? क्या यही उचित था कि मैं आपकी नींदको खराब करूँ ?

श्रीभाईजीने कहा— अरी बाई ! मैं कल रात डेढ़ बजेतक काम करता रहा। 'कल्याण'के लिये प्रूफ देख रहा था और लेख तैयार कर रहा था। प्रायः ही ऐसा होता है। तुम व्यर्थमें ही संकोच करके नहीं आयी। अब बताओ, उसकी तबीयत कैसी है ?

मैंने बाईकी तबीयतका हाल बतलाया और हाल सुनकर उन्होंने उपचारकी व्यवस्था भी की। यह सब तो हुआ ही, पर मेरे आश्चर्यको भी आश्चर्य हो रहा था कार्य करनेकी उनकी अतुल अमित क्षमताको और प्रीति करनेकी उनकी निर्मल अविरल रीतिको देखकर। ■

आ. श्रीनर्मदीबाई खेतान

[१] बात छोटी, पर सीख बड़ी

एक बार हमलोग गीतावाटिकाके कमरेमें श्रीभाईजीके पास बैठे हुए बात कर रहे थे और कमरेके बाहर श्रीभाईजीके दौहित्र प्रिय सूर्यकान्त और चन्द्रकान्त परस्परमें खेल रहे थे। तब वे दोनों छोटे-छोटे बालक थे। उनके शरीरकी स्थूलताको देखकर कोई भी यह सोच सकता था कि

दो गज-शावक मस्त होकर खेल कर रहे हैं। वे बच्चे ही तो ठहरे, खेलते-खेलते आपसमें कुछ नोक-झोंक हो गयी। वहीं से चन्द्रकान्त अपने बड़े भाई की शिकायत करते हुए जोर-जोरसे श्रीभाईजीसे कहने लगा— नानाजी ! नानाजी ! यह मुझे तंग कर रहा है।

उसकी बात सुनकर कमरेमें से बैठे ही श्रीभाईजीने चन्द्रकान्तसे कहा— *तुम तंग होते ही क्यों हो ? तुम तंग मत होवो।*

श्रीभाईजीने यह छोटी-सी बात तो प्रिय चन्द्रकान्तके प्रति कही, पर छू गयी मेरे हृदयको। इस उत्तरमें कितनी बड़ी सीख भरी हुई थी ? जगत तो व्यक्तिको तंग करना चाहता है, परंतु व्यक्ति उस ओर ध्यान ही क्यों दे ? यदि व्यक्ति जगतकी ओर न देखकर अपने लक्ष्यपर दृष्टि टिकाये रखे तो क्रमशः वही जगत सहयोगी बन जाता है। यह सत्य ही है कि श्रीभाईजीकी बात-बातमें एक शिक्षा रहा करती थी।

[२] मधुर स्वभाव सहज व्यवहार

पूज्य श्रीभाईजीने सन् १९७१ के मार्च मासमें महाप्रस्थान किया। इसके पहले उन्हें भीषण उदर-शूल रहा करता था। विविध प्रकारके उपचार भी हो रहे थे, परंतु उनसे अपेक्षित लाभ नहीं हो पा रहा था।

सन् १९७० के श्रीराधाष्टमी महोत्सवके बादकी बात है। सम्भवतः आश्विन मास था। हम कई बहिनें पूज्य श्रीभाईजीके पास बैठी हुई थीं। यद्यपि श्रीभाईजी कठिन शारीरिक कष्टसे पीड़ित थे, इसके बाद भी वे हमलोगोंसे प्रसन्न चित्तसे सच्चर्चा कर रहे थे।

रातके आठ बजे होंगे, उसी समय एक युवक श्रीभाईजीके कमरेमें आया। मैं उसे नहीं पहचानती थी कि वह कौन था, परंतु जिस निस्संकोच भावसे उसने कमरेमें प्रवेश किया और श्रीभाईजीसे बात की, इससे लगता था कि वह कोई परम आत्मीय जन है। उसकी आयु लगभग १८-१९ वर्षकी थी। उसके हाथमें एक बेल्ट था, जिसे पैंटमें पहनकर कमरपर कस दिया जाता है। उस युवकने वह बेल्ट श्रीभाईजीको देकर कहा— इसे आप पहनकर देख लीजिये कि ठीक है या नहीं। इसे पहननेसे उदर-शूलमें आराम होना चाहिये।

श्रीभाईजीने उस युवकसे कहा— भैया ! यह तो बतलाओ कि इसे कैसे पहना जाता है। मैं तो मूर्ख हूँ। मुझे इसके प्रयोगका पता नहीं।

मूर्ख शब्दको सुनकर वह युवक थोड़ा हँसा और बोला— बाबूजी ! आप भी कैसी अटपटी बात कह रहे हैं ? मूर्ख और आप ? आपकी बात पर भला कौन विश्वास करेगा ?

श्रीभाईजी पलंगपरसे उतर कर खड़े हो गये और उस युवकके कन्धेपर स्नेह पूर्वक हाथ रखकर बड़े सहज ढंगसे कहने लगे— *भैया ! जो जिस बातका जानकार नहीं होता, वह उस विषयमें मूर्ख ही होता है। मैं बेल्ट पहनना नहीं जानता, अतः मूर्ख ही तो हुआ। तुम बतलाओगे तो मैं सीख लूँगा। मनुष्यको तो अपने जीवनके अन्तिम समयतक सीखते रहना चाहिये।*

युवकने बेल्ट बाँधकर दिखा दिया, परंतु श्रीभाईजीके मधुर स्वभावके उस भोलेपनकी, उस सरलताकी, उस सहजताकी, उस अपनेपनकी छवि अभीतक मेरे मनपर छायी हुई है और बिना बात ही, बातकी बातमें उन्होंने यह बतला दिया कि हर व्यक्तिको अपना हृदय सदा खुला

रखना चाहिये किसी भी सुन्दर सीखको ग्रहण करनेके लिये। ■

श्रीरविशंकरजी शुक्ल

क्षुब्ध नागको समझाना

सन् १९६८ ई. की बात है। एक बार हमारे घरमें नाग-उपद्रवका आरम्भ भीषण रूपसे हो गया। इस उपद्रवको नाग-ताण्डव ही कहना चाहिये। नाग माने गेहुवन साँप, जिसे अँगरेजीमें कोबरा कहते हैं। घरमें नागने निकलकर सबसे पहले मुझको ही डसा। घरवालोंने तुरन्त उपचार किया और प्रभु कृपासे मेरे जीवनकी रक्षा हो गयी। इसे एक आकस्मिक घटना मानकर सन्तोष कर लिया गया। इसके तीन दिन बाद ही नागने मेरी भाभीजीको डस लिया। भाभी कुछ दिन पहले ही गौना होकर आयी थीं। हम सभीलोग बहुत अधिक घबड़ा उठे। भागलपुरमें पहुँचे हुए एक फकीर थे, उनके पास भाभीजीको ले जाया गया। उनके द्वारा प्रदत्त अभिमन्त्रित जलके प्रयोगसे भाभीजीके प्राणोंकी रक्षा हो गयी।

इस घटनाके कुछ दिन बाद ही नाग और नागिन हमारे घरमें निकले। वह नाग मेरे बड़े भाईपर झपटा। बड़े भाईने चटसे अपना बचाव किया और फिर रोषमें भरकर बड़ी फुर्तीसे उन्होंने कठोर प्रहार किया। उस प्रहारसे नागिनकी जीवन-लीला समाप्त हो गयी। नागिनके मरते ही हमलोगोंने समझ लिया कि नाग-संकटका अर्धभाग सदाके लिये टल गया, परंतु सच तो यह है कि इस प्रहारने महासंकटका बीज बो दिया। अपने नागिनकी मृत्युसे वह नाग बहुत क्षुब्ध हो उठा और यह बात प्रसिद्ध ही है कि नागमें बदला लेनेकी भावना भयंकर रूपसे जाग उठती है। यही बात इस प्रसंगमें भी हुई। नाग तो बदला लेनेके ताकमें था और अवसर देखकर उसने मेरी भाभाजीको पुनः डस लिया। तुरन्त उपचार किया गया और भाभीजी किसी प्रकार बचकर कालके गालसे बाहर निकल आयीं। इस घटनासे हमलोग काफी संत्रस्त थे। मनको सबसे अधिक आतंकित करने वाली बात यह थी कि उस नागने भाभीजीको एक बार और, अर्थात् तीसरी बार डस लिया। प्रभुने कृपा करके भाभीजीको पुनः जीवनका दान दिया, परंतु अब घरके सभी लोगोंको सदा भय लगा रहता था कि न जाने वह नाग कब किसको डस जाय।

इस उपद्रवसे हमलोग इतने अधिक भयभीत हो गये थे कि घरको ही छोड़नेकी बात हमलोग सोचने लगे। लोगोंने बतलाया कि नाग-जाति तो शत्रुका पीछा किया करती है। जिस नये घरमें जाना होगा, वहाँ भी तो वह नाग पहुँच सकता है। इस नाग-संकटकी सूचना पूज्य श्रीभाईजीको पत्र द्वारा स्वर्गाश्रम दी गयी। श्रीभाईजी उस समय स्वर्गाश्रममें विराज रहे थे। श्रीभाईजी वह पत्र लेकर पूज्य श्रीबाबाके पास गये। पूज्य बाबा दो-तीन अन्तरंग जनोंके साथ सच्चर्चा कर रहे थे और मेरे पिताजी भी वहीं बैठे हुए थे। श्रीभाईजीने पूज्य बाबाके सामने ही पिताजीको वह पत्र पढ़कर सुनाया। पत्रको सुनते ही पिताजीने श्रीभाईजीसे कहा– अवश्य ही बच्चोंसे श्रीराधारानी श्रीश्यामसुन्दरकी सेवामें कोई त्रुटि हुई होगी और उसीका यह परिणाम है।

इस उत्तरको सुनकर पूज्य बाबाको बड़ी प्रसन्नता हुई। इस उत्तरमें पिताजीके श्रद्धालु हृदयकी एक झलक थी। पूज्य बाबा हँसते हुए कहने लगे– कालीय-दमन बिहारीलालकी जय।

ये ही आपके यहाँ प्रकट हुए हैं।

पूज्य बाबा इस नाग-लीलाको सुनकर विहस तो रहे ही थे, परंतु इसीके साथ यह भी हुआ कि पिताजीके प्रति पूज्य बाबाका जो प्यार था, उस प्यारमें पूज्य बाबाके नेत्र सजल भी हो उठे। पूज्य बाबाके सामने ही श्रीभाईजीने पिताजीसे कहा– इस उपद्रवकी शान्तिके लिये कुछ उपाय करना चाहिये।

पिताजीने तत्काल हाथमें अपनी जनेऊ ले ली और अपने हाथ जोड़े-जोड़े उन्होंने दीनतापूर्वक श्रीभाईजीसे कहा– सारे उपाय आपके ही हाथमें है। परिवारकी सारी सँभाल आपके ऊपर है। आपकी कृपासे ही बच्चोंकी सुरक्षा होगी। मैं तो आपके चरणाश्रित हूँ।

पिताजीके इस समर्पण-भावपर पूज्य बाबा तो बलिहार हो गये। श्रीभाईजीने पिताजीको थोड़ी देर बाद कमरेमें आनेके लिये कहा। पिताजी श्रीभाईजीके कमरेमें पहुँचे, इसके पहले ही श्रीभाईजीने मेरे बड़े भाईके नाम एक पत्र भागलपुर लिख दिया कि इस संकटसे भयभीत मत होना। तुम्हारे सिरपर भगवानका हाथ है और मंगल ही होगा।

जब पिताजी श्रीभाईजीके कमरेमें गये तो उन्होंने एक मन्त्र लिखकर दिया और कहा– *इसका जप आप करें और घरके सब लोग करें। इसके अतिरिक्त भोजपत्रपर इस मन्त्रको लिखकर घरके द्वारपर चिपका दें और इस मन्त्रकी ताबीज बनाकर आप अपने गलेमें धारण कर लें। मन्त्रके प्रभावसे यह नाग-उपद्रव शान्त हो जायेगा। यह मन्त्र एक कवच है, जिससे सबकी रक्षा होगी।*

स्वर्गाश्रमसे पिताजी भागलपुर आये। जैसे-जैसे करनेके लिये श्रीभाईजीने कहा था, पिताजीने वैसे-वैसे ही किया। उन्होंने अपने गलेमें ताबीज धारण किया, मन्त्रको द्वारपर चिपकाया तथा उसका जप स्वयं करते तथा घरके सभी लोगोंसे करवाते। इतना सब होनेके बाद भी वह उपद्रव शान्त नहीं हुआ और एक दिन पिताजी भी सर्प-दंशके शिकार हो गये। पिताजी घरकी नाली साफ कर रहे थे, तभी उस नागने आकर उनको डस लिया। पता ही नहीं चलता था कि वह नाग कब आ जाता था और डसकर छिप जाता था। घरके लोगोंने उपचार करना चाहा तो उन्होंने सर्वथा मना कर दिया। पिताजीका श्रीभाईजी एवं पूज्य बाबाकी वाणीपर अटूट विश्वास था। हमलोगोंने उन सिद्ध फकीरके पास चलनेको कहा तो उन्होंने पूर्णतः मना कर दिया। उपचारके लिये हमलोगोंने जब-जब अनुरोध किया, तब-तब उन्होंने यही कहा– *बेटा! श्रीभाईजीकी कृपापर विश्वास करो। उन्होंने जो मन्त्र दिया है, वह व्यर्थ नहीं जायेगा। और क्या पूज्य बाबाकी बात भूल गये? पूज्य बाबाने कहा था कि नागके रूपमें कालीय-दमन बिहारीलालजी ही आते हैं! बेटा! यह शरीर तो नश्वर है। वे बिहारीलाल मुझसे यहाँ सेवा करवायेंगे तो यहाँ करेंगे और मुझे वहाँ ले जाना चाहेंगे तो वहाँ चले जायेंगे। अपनेको तो उनकी चाकरी करनी है।*

घरके और बाहरके अनेक लोगोंने उपचार हेतु जितना अनुरोध किया, वह सारा व्यर्थ गया। नागने बायें हाथकी अँगुलीपर अपने दाँत गड़ाये थे और बायाँ हाथ ज्यों-ज्यों अधिकाधिक नीला पड़ता गया, त्यों-त्यों हमलोगोंकी निराशा बढ़ती चली गयी। हमलोग अब पूर्णतः निराश थे और मनमें मान बैठे थे कि पिताजी अब नहीं रहेंगे। हमलोगोंके मन-मस्तिष्कमें चाहे जितना

झंझावात हो, पर पिताजीकी निष्ठा हिमालयवत् सुदृढ़ रही कि श्रीभाईजीकी कृपासे मंगल ही होगा और वस्तुतः चमत्कार घटित हुआ। विलम्ब तो हुआ, परंतु उस निष्ठाके फलस्वरूप पिताजीके जीवनकी रक्षा हो गयी।

पिताजीके जीवनकी रक्षा हो गयी तो उस नागने मेरी छोटी बहिन कल्याणीको डस लिया। कल्याणीको डसने वाले नागपर पिताजीने न तो प्रहार किया और न उसका प्रतिकार किया, अपितु उसकी पूजा की। पिताजीके मनमें भाव यह था कि कालीयदमन बिहारीलाल ही नागके-रूपमें आते हैं। हमलोग उपचारके लिये कल्याणीको उस सिद्ध फकीरके पास ले जाना चाहते थे, पर पिताजीने इसके लिये मना कर दिया। उनकी निष्ठा तो यही थी कि श्रीभाईजी ठीक करेंगे। घरपर ही जो उपचार सम्भव था, वह किया गया और बहिन कल्याणीके प्राणोंकी रक्षा हो गयी। इस नाग-प्रकोपके कारण हमारे परिवारपर हर क्षण मृत्युका भय बना रहता था।

अब श्रीराधाष्टमी महोत्सव समीप था। मेरी बड़ी बहिन परमादरणीया श्रीरुक्मिणी बाई महोत्सवके लिये भागलपुरसे गोरखपुर आयीं और श्रीभाईजीको प्रणाम करनेके लिये उनके कमरेमें गयीं। श्रीभाईजी कमरेके द्वारपर ही खड़े हुए मिल गये। बाईने सभक्ति श्रीभाईजीको प्रणाम किया। श्रीभाईजीने पूछा— माता-पिता प्रसन्न हैं ना ?

बाईने कहा— हाँ, प्रसन्न हैं। आप माँ और बाबूजीका कुशल-समाचार तो पूछते हैं, पर मेरी भाभीकी ओर आपका ध्यान नहीं।

बाईके मनमें भाई-बहिन-पिताजी, परिवारके सभी लोगोंके लिये बड़ा कष्ट था, पर सर्वाधिक कष्ट था भाभीके लिये, जो तीन बार डसी गयीं थी। बाईने श्रीभाईजीको बतलाया— हमारे घरमें जो नाग-प्रकोप है, उसे जानते ही हैं। मेरी भाभी अभी-अभी गौना होकर आयी है और नागने उसे तीन बार डस लिया।

श्रीभाईजी बाईकी बात सुनते रहे और एकटक देखते रहे। ज्यों ही बाईकी बात समाप्त हुई, श्रीभाईजीने अपना दाहिना हाथ वरद मुद्रामें उठाया और सान्त्वना देते हुए बड़े ही सहज ढंगसे कहा— मैं समझा दूँगा उस नागको।

श्रीभाईजीके इस उत्तरसे बाईको बड़ा सन्तोष हुआ। श्रीभाईजीसे आश्वासन मिलनेके बाद हमारे घरका नाग-उपद्रव सदाके लिये पूर्णतः समाप्त हो गया। गोरखपुरमें बैठे-बैठे भागलपुरके उस नागको कब समझाया और कैसे समझाया यह तो वे ही जाने, पर हमारे घरका यह एक प्रत्यक्ष सत्य है कि उस आश्वासनके बाद कोई भी दुर्घटना नहीं हुई और उस भयावने आतंकसे हमारा परिवार पूर्णतः मुक्त हो गया।

मेरे मनमें बार-बार यह भाव उठ रहा है कि द्वापरयुगकी घटनाका पावन दर्शन, नवीन आवरणमें आज यहाँ हो रहा है। महाभागा गोपियोंने कहा था—

विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद्दषभ ते वयं रक्षिता मुहुः।

कालीय नागके ह्रदके विषैले जलसे और अघासुरके रूपमें अजगर सर्पसे जैसे भगवान श्रीकृष्णने उस समय व्रजवासियोंकी रक्षा की थी, वैसे ही इस समय श्रीकृष्णस्वरूप श्रीभाईजीके द्वारा हमलोगोंकी रक्षाका विधान बन गया।

यह बात नहीं कि फिर हमारे घरमें नाग नहीं निकला हो। घरमें नाग-देवताके दर्शन

कभी-कभी होते ही थे, पर अब दूसरा ही दृश्य देखनेको मिलता था। ज्यों ही नाग-देवता आते, श्रीभाईजी एवं पूज्य बाबाकी भावनाके अनुसार उन कालीय-दमन बाँकेबिहारीका पिताजी पूजन करते। घरमें ठाकुर-सेवा होनेसे पूजाकी विविध वस्तुएँ सदा रहती ही थीं। पिताजी उस नागपर चन्दन-अक्षत चढ़ाते, फूल चढ़ाते और उसे पीनेके लिये दूध देते। वह दूध पीता और ज्यों ही पिताजी उसे साष्टांग प्रणाम करते, वह नाग चला जाता। ऐसा एक बार नहीं, कई बार हुआ। एक बात और, भागलपुरसे थोड़ी ही दूरपर चम्पापुरी नामक स्थानपर नाग-देवताकी स्थली है। यहाँ नाग-देवताकी पूजा होती है। श्रीभाईजीकी आज्ञानुसार प्रत्येक वर्ष नागपंचमीको पिताजी वहाँपर पूजन तो विस्तार पूर्वक करते ही थे, इसके अतिरिक्त वे एक बार और विशेष पूजन किया करते थे। नागमें भगवद्भाव होनेसे पिताजी कभी भी नागको मारने नहीं देते थे। श्रीभाईजी एवं पूज्य बाबाके वचनोंपर अगाध आस्था होनेके कारण पिताजीकी मान्यता यही थी कि ये नागदेवता हमें आशीर्वाद देने तथा हमारा मंगल करनेके लिये आते हैं। ■

एक बहिन

उन जैसा भाई मिला

मैं पूज्य श्रीसेठजी और पूज्य श्रीभाईजीके सत्संगके लिये सपरिवार स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) गयी हुई थी। हमलोग गीताभवनके एक कमरेमें ठहरे हुए थे। मेरे श्वसुरजीकी श्रीसेठजी और श्रीभाईजीपर बहुत अधिक श्रद्धा थी। हमारे वैष्णव परिवारके प्रत्येक सदस्यके हृदयमें इन दोनों महान विभूतियोंके प्रति अपार पूज्य भावना थी। इनके सत्संगका लाभ उठानेके लिये हमलोग गर्मीके दिनोंमें प्रायः स्वर्गाश्रम आ जाया करते थे।

भगवानने जैसा श्रेष्ठ और सात्त्विक पितृ-कुल और श्वसुर-कुल दिया, वह मेरे लिये परम सौभाग्यकी बात है। दोनों घरोंका धार्मिक वातावरण मेरे लिये वरदान था। जीवनमें किसी प्रकारकी कोई चिन्ता भी नहीं थी। बस, एक अभावकी स्मृति होते ही मन उदास हो जाया करता था। मेरे कोई भाई नहीं था। भाईका अभाव सदा चुभता रहता था।

एक संध्याके समय मैं गीताभवनके सामने श्रीगंगाजीके किनारे घाटपर बैठी हुई थी। वहीं मुझे भागलपुर वाली आदरणीया श्रीरुक्मिणीबाई और श्रीनर्मदीबाई दिखलायी दे गयीं। वे मुझे नहीं जानती थीं, पर मुझे उनका परिचय प्राप्त था, अतः मैं उनके पास जाकर बैठ गयी और बहुत देरतक उनसे भक्ति-भावकी अच्छी-अच्छी बातें होती रहीं। उनके स्नेह और सहृदयताको देखकर मेरा मन बह पड़ा और उनसे भी मैं अपने अभावकी बात कह बैठी— भगवानने मुझे बहुत दिया, पर भाई नहीं दिया और यह अभाव बड़ा कसक उठता है।

आदरणीया बाईने मुझे न कुछ उपदेश दिया, न तनिक सान्त्वना दी और न कोई बात कही। मेरी बात सुनते ही उसने कहा— चलिये मेरे साथ। श्रीभाईजीके पास चलें।

मैं उठकर उनके साथ चल दी। मैं उनके लिये एक अपरिचित महिला थी, परंतु उनकी आत्मीयता और सहृदयताको देखकर मेरा मन मुग्ध हो गया। वे मुझे सीधे डालमिया कोठीमें श्रीभाईजीके पास ले गयीं। श्रीभाईजी अपने कमरेमें बैठे हुए कुछ काम कर रहे थे। शायद

'कल्याण' पत्रिकाके लिये लेख तैयार कर रहे होंगे। हम तीनोंको देखते ही श्रीभाईजी मुस्कुरा उठे। मधुर मुस्कान बिखेरते हुए उन्होंने बड़े स्नेह और सम्मान पूर्वक बैठनेके लिये कहा। हाथके कागजोंको गोदमें रखते हुए उन्होंने कहा– क्यों, कैसे आना हुआ ?

आदरणीया बाईने उनसे कहा– घाटपर ये बहिन अचानक मेरे पास आ गयीं। अच्छी-अच्छी बातें होते-होते यह अपना एक दुखड़ा सुनाने लगीं। इन्हें मैं आपके पास इसलिये ले आयी हूँ कि आप इनका कष्ट सुन लें।

श्रीभाईजीकी आँखें मेरी ओर उठकर पूछने लगी कि क्या कष्ट है। श्रीभाईजीके लिये मैं कोई अपरिचिता नहीं थी। वे मुझे भली प्रकार जानते थे और जानते थे एक सत्संगीके नाते। मैंने श्रद्धापूरित हृदयसे कहना आरम्भ किया– भाईजी ! भगवानकी कृपासे तथा आपलोगोंके आशीर्वादसे घरपर किसी बातकी कमी नहीं है। खाने-पीने, ओढने-पहनने, आने-जानेकी सारी सुविधा होते हुए भी एक चीजका अभाव खटक जाता है कि मेरे कोई भाई नहीं है। भाईके नहीं . . . . . .

मैं अपनी बात पूरी तरह कह भी नहीं पायी थी कि श्रीभाईजी मेरी ओर सरक आये और मेरे सिरपर हाथ रखकर कहने लगे– मैं तुम्हारा भाई हूँ न ? सचमुच मैं तुम्हारा असली भाई हूँ।

मुझे विश्वास नहीं हो रहा था मेरे कानोंपर। क्या श्रीभाईजी जैसे महान संत मुझे भाईके रूपमें मिल सकते हैं, यह तो मेरे अनुमानसे सर्वथा परेकी बात थी। श्रीभाईजीने जिस प्यारसे मेरे सिरपर और पीठपर हाथ सहलाया, उस स्पर्शसे मुझे अत्यधिक रोमांच हो आया। भावोंमें ऐसा उफान आ गया, जो रोके-से भी नहीं रुका। प्यारके आवेगमें मैं रोने लगी। आँखोंमें गंगा-जमुनाकी बाढ़ आ गयी। मैंने श्रीभाईजीकी गोदमें सिर रख दिया और लगभग आधा-पौन घंटा गोदमें पड़ी-पड़ी रोती रही। नेत्र तो बह ही रहे थे, नासिका भी इतनी अधिक बह रही थी कि सीमा नहीं। भावोंकी प्रबलताके कारण मैं ध्यान नहीं दे पायी कि मेरे नेत्र और नासिकाके निर्झरणके फलस्वरूप श्रीभाईजीकी धोती भीग-भीग करके खराब हो रही है। धोती खराब होती रही, इसके बाद भी श्रीभाईजीने अपने गोदमें ही मुझे पड़े रहने दिया। भावोंका तीव्र वेग जब कुछ शान्त हुआ तो मैं धीरेसे उनकी गोदसे उठी। कुछ देर चुप बैठी रही। आज मेरा मन आनन्दसे भरपूर था। आज जो बात श्रीभाईजीके मुखसे निकली और मेरे कानोंने सुनी, उसपर जल्दी मन टिक नहीं रहा था। मैंने श्रीभाईजीसे कहा– आज जो हुआ, वह स्वप्न है या सच है ? क्या आप सचमुच मेरे भाई हैं ? मुझे कैसे विश्वास हो कि आप सचमुच मेरे भाई हैं ?

श्रीभाईजीने कहा– क्या मैं यों ही कह रहा हूँ? मैं सचमुच तेरा भाई हूँ। ला, मेरे हाथमें राखी बाँध।

मैं जो कुछ-कुछ संदेह कर रही थी, उसपर मुझे शर्म लगने लगी। नर्मदीबाई दौड़कर पूज्या माँजीके पाससे रोली, चावल और मोली ले आयीं। मैंने श्रीभाईजीके भालपर रोलीका टीका किया, चावल चिपकाये और उनकी कलाईमें राखी बाँध दी। श्रीभाईजीने मेरे भी टीका किया और राखीका नेग दिया। इतना होनेके बाद श्रीभाईजीने कहा– अब तुमको विश्वास हो गया न ?

श्रीभाईजीकी बात सुनकर मैं मन्द-मन्द हँसने लगी और श्रीभाईजीके पावन चरणोंमें मैंने

अपना मस्तक रख दिया। यह मेरे अनोखे भाग्योदयका दिन था। अब मैं रोज ही श्रीभाईजीको प्रणाम करनेके लिये जाने लगी। प्रणाम तो मैं नित्य ही करती थी, पर अब प्रणाम करनेका सुख नवीन प्रकारका था। अबतक मैं उनको प्रणाम करती थी एक महान संत मानकर और अब प्रणाम करती हूँ अपना निज भाई मानकर। मैं तो आदरणीया रुक्मिणीबाई तथा नर्मदीबाईके प्रति आभारी हूँ, जिनके कारण श्रीभाईजी जैसा महान संत मुझे निज भाईके रूपमें मिला।

धीरे-धीरे समय बीतने लगा। मेरे घर विवाहका अवसर आया। मेरे पुत्रका विवाह था। मैंने बहिनके नाते श्रीभाईजीको निमन्त्रण भेजा। वे विवाहके अवसरपर आना तो चाहते थे, परंतु परिस्थितियोंने उनको विवश कर दिया। कुछ अस्वस्थता, कुछ व्यस्तता और कुछ अन्य कारणोंसे वे चाह करके भी आ न सके। वे आ तो नहीं सके, पर वे मुझ बहिनको भुला भी नहीं सके। मैं हूँ तो अति साधारण, पर मुझ अति नाचीज बहिनके लिये भी उन महानके हृदयमें प्यार छलछला रहा था। उन्होंने दौहित्र सूर्यकान्तको अपने स्थानपर विवाहमें भेज दिया। प्रिय सूर्यकान्तके आनेसे ही मुझे अतीव प्रसन्नता थी मानो श्रीभाईजी ही आ गये हों।

विवाहके पूर्व जब भात भरनेका नेग आया तो प्रिय सूर्यकान्तने कहा— पूज्य नानाजीने आपके लिये चूनरी भेजी है। वह मैं आपको उनकी ओरसे ओढाऊँगा। वह चूनरी नानाजीने अपने हाथसे आपके लिये दी है और यह पत्र भी दिया है।

जिस समय प्रिय सूर्यकान्तने मुझे चूनरी ओढायी, मैं अपने आपेमें नहीं रह सकी। चूनरीका स्पर्श होते ही मुझे श्रीभाईजीके दिव्य स्पर्शकी अनुभूति हुई और मैं तत्काल भाव-विभोर हो उठी। मेरे सारे शरीरमें रोमांच हो आया। मुझे अपनी सुध-बुध नहीं रही। लोगोंने मुझे बादमें बतलाया कि जो भी मेरे सामने आता, मैं उसीको प्रणाम करने लगती। भरी-भरी आँखोंसे प्रणाम करनेका क्रम दो घंटेसे अधिक समयतक चलता रहा। मेरे पुत्रका 'बैठा-विवाह' हुआ था। कन्याकी माताजी विवाहका नेगचार पूरा करनेके लिये हमारे घरपर आयीं और मुझसे कहने लगीं— सगीजी! उठिये। अब यह नेगचार करना है न?

उनके द्वारा ऐसा कहे जानेके बाद भी मैं शून्य नेत्रसे उनकी ओर देखती रही और उनको प्रणाम करने लगी। मेरे मूक अधर, सजल नयन और विह्वल मुखको देखकर लोग आश्चर्य करने लगे कि इसे अचानक क्या हो गया, पर मैं कुछ बतला सकनेकी स्थितिमें थी ही नहीं कि श्रीभाईजीकी चूनरीने मेरी क्या दशा बना दी। बहुत देर बाद जब भाव कुछ शान्त हुए, तब मैं कहीं विवाह-कार्यमें सहयोग दे सकी। मैं वस्तुतः स्वयंको परम सौभाग्यशालिनी मानती हूँ, जो उन्होंने मुझे बहिनके रूपमें अपना लिया। उनसा भाई पाकर मैं धन्य हो गयी। ■

डा. श्रीसुरेशचन्दजी सेठ

आग और गंगाकी धारा

ऋषिकेशसे लगभग दो मीलकी दूरीपर गंगाजीके उसपार स्वर्गाश्रममें गीता-भवन है, जहाँ सत्संगी बन्धुओंके ठहरनेकी सुन्दर व्यवस्था है और जहाँ प्रतिवर्ष गर्मिके दिनोंमें अनेक साधु-महात्माओंका सत्संग और सांनिध्य सुलभ रहता है। गीता-भवनके पास ही परमार्थ-

निकेतन है, जहाँ आवासकी सुविधा और सत्संगकी व्यवस्था गीता-भवन जैसी ही है। एक बार गीता-भवन और परमार्थ-निकेतनमें एक छोटेसे भूमि खण्डके लिये परस्परमें वाद-विवाद हो गया। प्रसंग सम्भवतः सन् १९६२ के आस-पासका होना चाहिये। विवाद मात्र इसी बातको लेकर था कि लोगोंके आने-जानेका मार्ग किधरसे हो। एक पक्ष कहता था कि मार्ग उधरसे हो और दूसरा पक्ष कहता था कि वह मार्ग इधरसे हो। दोनों पक्षोंके ही तर्क प्रबल थे और कोई भी पक्ष अपनी मान्यताको छोड़नेके लिये तैयार नहीं था।

जब परस्परकी बातचीतसे यह विवाद दूर नहीं हो पाया तो लोगोंने न्यायालयकी शरण ली। न्यायालयमें गीता-भवनके पक्षकी जीत हुई। परमार्थ-निकेतनवालोंने उससे बड़े न्यायालयमें अपील की। यहाँ भी गीता-भवनका पलड़ा भारी रहा। परमार्थ-निकेतन हार माननेको तैयार नहीं था, उससे भी ऊँचे न्यायालयमें परमार्थ-निकेतनवाले गये। वहाँ भी गीता-भवनकी जीत हुई। अब इस छोटी-सी बातको लेकर दोनों पक्षवालोंने अपनी प्रतिष्ठाका प्रश्न बना लिया। दोनों संस्थाओंके उद्देश्य समान थे और दोनोंके कर्णधार और कार्यकर्तागण महान थे, पर यहाँ भी वैमनस्यने घर कर लिया। जो सत्संगी लोग गीता-भवन और परमार्थ-निकेतनमें आये हुए थे, केवल उनमें ही नहीं, अपितु आस-पासके सभी आश्रम-बन्धुओंमें यह पारस्परिक वैमनस्य चर्चाका विषय बन गया था। वैमनस्यके इस रूपको देखकर सभी बड़े व्यथित हो रहे थे।

वृन्दावन स्थित मानव-सेवा-संघके संस्थापक पूज्य स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराजका गीता-भवनमें प्रतिवर्ष शुभागमन हुआ करता था और वे लगभग एक-डेढ़ मास रहा करते थे। गीता-भवन पधारनेपर उनका प्रवचन होता ही था। स्वामीजी महाराज सत्यके पक्षपाती एवं बड़े ही स्पष्टवादी थे। एक बार परमार्थ-निकेतनवालोंने स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराजको प्रवचन हेतु पधारनेके लिये अनुरोध किया। वहाँ स्वामीजीका प्रवचन पूर्वाह्न कालमें हुआ। परमार्थ-निकेतनके हॉलमें सत्संगी बन्धुओंके समक्ष स्वामीजीने सुन्दर मानवके सुन्दर जीवनकी रूप-रेखाका वर्णन किया और फिर दोनों पक्षोंमें व्याप्त वैमनस्यपर टिप्पणी करते हुए स्वामीजीने कहा— *संसारका साधारण मानव परिवार-पड़ोसके राग-द्वेष, कलह-क्लेशकी आगसे प्रायः संत्रस्त रहता है। वह संतप्त मानव शीतलता पानेके लिये संतों-महात्माओंकी शरणमें जाता है। सांसारिक राग-द्वेषकी आगसे झुलसे हुए वे व्यक्ति जब यहाँ आते हैं और जब वे यह देखते हैं कि ये संत, ये महात्मा, ये संस्थाएँ, ये समितियाँ भी उसी आगकी लपेटमें हैं, तब उनकी कोमल भावनाओंको बड़ी चोट पहुँचती है। शीतलताकी खोजमें निकला हुआ वह साधारण मानव अब किसका आश्रय ले? वह कहाँ जाये? वह किसकी शरण ले? उसे बड़ी निराशा होती है। मुझे संस्थाओंसे तथा संतोंसे यही कहना है कि दूसरेकी आगपर पानी वही डाल सकता है, जिसका जीवन माँ गंगाकी पावन धाराके समान शीतल और निर्मल हो, जहाँ आग है ही नहीं। वहाँ है केवल परम निर्मल जल, परम पावन जल, परम मधुर जल, परम शीतल जल।*

स्वामीजी महाराज प्रवचन देकर अपने कमरेमें चले आये। किसीको ऐसी आशा नहीं थी कि स्वामीजी इतनी खरी बात कह देंगे। लोगोंने स्वामीजीसे एकान्तमें अनुरोध किया— आपको इतने खुले रूपमें नहीं बोलना चाहिये था।

स्वामीजीने कहा— तो क्या मैं उनको प्रसन्न करनेके लिये उनकी मन-भावनी बात बोलता?

मुझे ज्ञात है और यहाँके सत्संगी बन्धु आकर मुझे बतलाते हैं कि यहाँ कितना और कैसा क्षोभ भरा हुआ है।

इसी दिन अपराह्न कालमें गीता-भवनके सत्संग हॉलमें पूज्य स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराजका प्रवचन हुआ और उसी वैमनस्यपर टिप्पणी करते हुए उन्होंने यहाँ भी कहा— *यह गीता-भवन गीताप्रेसका एक अंग है। गीताप्रेस धर्मका प्रचार तो चाहता है, पर वह यह भी चाहता है कि उस प्रचारपर गीताप्रेसका ठप्पा लगा रहे। धर्मका प्रचार ठप्पा-सापेक्ष न कभी था, न है और न होगा। आजके सौ साल पहले गीताप्रेस था नहीं और सौ साल बाद, पता नहीं, गीताप्रेस रहेगा या नहीं। जब गीताप्रेस नहीं था, तब भी धर्मकी स्थिति थी और जब गीताप्रेस नहीं रहेगा, तब भी धर्मकी स्थिति रहेगी। धर्मका स्वरूप सनातन है। माँ गंगाकी तरह धर्मका प्रवाह अखण्ड है और उसकी गति अबाध है। यह हमारे लिये सौभाग्यकी बात होगी, यदि हमारे द्वारा धर्मकी कुछ सेवा बन जाती है और यह सेवा तभी सुन्दर रूपसे सम्पन्न हो पायेगी जब कि हमारे जीवनमें मानवोचित सद्गुणोंकी प्रतिष्ठा रहेगी।*

स्वामीजी महाराजने जो प्रवचन अपराह्नकालमें गीता-भवनमें दिया था, उसने सारे वातावरणको झकझोर दिया। वातावरणमें जो क्षोभ परिव्याप्त था, वही स्वामीजी महाराजके मुखसे मुखरित हो उठा था।

उन दिनों पूज्य श्रीभाईजी भी स्वर्गाश्रमकी डालमिया कोठीमें विराज रहे थे। श्रीभाईजीको भी उस मुकदमेबाजीकी जानकारी थी और वे इसका विरोध करते थे। इस पारस्परिक वैमनस्यको देखकर श्रीभाईजीको बड़ा कष्ट होता था। विशेष कष्ट होता था कार्यकर्ताओंकी पारमार्थिक हानिकी कल्पना करके। बम्बईमें पारसी प्रेतने श्रीभाईजीको बतलाया था कि जो लोग द्वेष लेकर मरते हैं, उसको परलोकमें बड़ी यातना सहनी पड़ती है। क्या यही यातना गीता-भवन और परमार्थ-निकेतनके कार्यकर्ताओंको भी भोगनी पड़ेगी? ये लोग धार्मिक संस्थासे जुड़े थे धर्म-सेवाकी भावनासे और अब उन्हींके द्वारा धर्म-शून्य आचरण हो रहा है, यह कितना बड़ा प्रमाद है! इतना ही नहीं, न्यायालयसे अनुकूल निर्णय प्राप्त करनेके लिये कार्यकर्ता लोग अपने प्रयासमें जब उचित-अनुचितका ध्यान नहीं रखते थे, तब श्रीभाईजी सिहर उठते थे। यह तो धर्म और कर्तव्यके नामपर अधर्माचरण है। उनकी ऐसी सभी चेष्टाओंको सुनकर श्रीभाईजीका मन अत्यधिक खिन्न हो जाया करता था। श्रीभाईजी दबाव देकर सुलहनामा करवा सकते थे, पर यह सुलहनामा ऊपरी होता, मनके भीतर तो वैमनस्य रहता ही। बाहरी आग उतनी घातक नहीं होती, जितनी भीतरी आग हुआ करती है। यह विवाद वस्तुतः तभी शान्त और समाप्त होता, जब सबके हृदयमें परिवर्तन हो। श्रीभाईजीके कहनेसे लोग मान तो जाते, पर वह शान्ति स्थायी नहीं होती। श्रीभाईजी अवसरकी प्रतीक्षा कर रहे थे कि कब लोगोंके हृदयकी भावनामें वास्तविक परिवर्तन दृष्टिगत होगा। श्रीभाईजी गीताप्रेसवालोंको समझाते भी थे, पर अपेक्षित लाभ होता नहीं था। श्रीभाईजीके हृदयमें बड़ी व्यथा थी। इस व्यथाके कारण ही संभवतः परिस्थितिमें परिवर्तन आया। संतके हृदयकी व्यथा व्यर्थ भला कैसे होती? भले न्यायालयमें गीताप्रेसकी जीत हो गयी थी, पर जगतके सामने दोनों ही पक्ष उपहासास्पद बने हुए थे। जब किसी प्रकारसे भी वैमनस्यकी आग शान्त नहीं हो पायी, तब गीताप्रेसवालोंने श्रीभाईजीसे कहा— इस मामलेको आप सलटाइये।

श्रीभाईजीने उन अनुरोध करनेवालोंसे कहा– फिर मैं जो भी करूँगा, वह आप सभीको वस्तुतः स्वीकार होगा न? मेरे संकोचके कारण नहीं, अपितु वह हृदयसे सभीको मान्य होना चाहिये।

उन सभी लोगोंने श्रीभाईजीको अपनी प्रसन्न सहमति प्रदान की। अवसर देखकर श्रीभाईजी परमार्थ-निकेतन गये और वहाँके प्रधान पूज्य स्वामी श्रीशुकदेवानन्दजी महाराजको प्रणाम किया। स्वामीजीने श्रीभाईजीको बड़े सम्मान पूर्वक अपने पास बैठाया और मधुर वाणीमें पूछा– आज कैसे पधारना हुआ?

श्रीभाईजीने कहा– *यह झगड़ा और यह वैमनस्य हम लोगोंको शोभा नहीं देता। हम एक ही हिन्दू धर्मके मानने वाले हैं, भगवान राम और भगवान श्रीकृष्ण ही हमारे उपास्य हैं, रामायण और गीता ही हमारे धर्म-ग्रन्थ हैं, हम दोनोंके कार्योंका उद्देश्य भी एक ही है। फिर हम लोगोंमें यह राग-द्वेष शोभा नहीं देता। आपकी प्रसन्नता ही मेरी प्रसन्नता है। आप जैसा चाहें, वैसा कर लें।*

इतना कहकर श्रीभाईजीने एक पन्ना अपनी जेबसे निकाला और उसे खोलकर उनके सामने रख दिया। उस पन्नेमें नीचे श्रीभाईजीने अपना हस्ताक्षर कर रखा था। हस्ताक्षर युक्त पन्नेको देखकर स्वामी श्रीशुकदेवानन्दजी महाराजने पूछा– यह क्या?

श्रीभाईजीने कहा– *हस्ताक्षर करके ही इस पन्नेको मैं अपने साथ लाया हूँ। इसमें स्थान खाली है। आप जो चाहें, वह लिख लें। हमें सब स्वीकार है, पर यह पारस्परिक वैमनस्य उचित नहीं। मैं तो बहुत पहले ही यह करना चाहता था, पर अनुकूल अवसर अब मिला।*

अब स्वामी श्रीशुकदेवानन्दजीके कपोल अश्रुओंसे भीग रहे थे। उन्होंने श्रीभाईजीके हाथको अपने हाथमें ले लिया। स्वामीजी कुछ बोलना चाह रहे थे, पर वे बोल नहीं पा रहे थे। भावके किंचित् शमित होनेपर स्वामीजीने श्रीभाईजीसे कहा– *भाईजी! सचमुच आपकी गरिमाको कोई छू नहीं सकता। आपके समान बस, आप ही हैं।*

वह सारा वैमनस्य एक क्षणमें दूर हो गया। वह सारी आग गंगाकी परम शीतल धारामें सदाके लिये शान्त हो गयी। सारे वातावरणमें मधुरता परिव्याप्त हो गयी और दोनों पक्षोंमें स्नेह उमड़ पड़ा। ■

आ. श्रीकौशल्याबाई बंका

वे सँभालते हैं

पूज्य बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) का जितना और जैसा वात्सल्य मुझे जीवनमें मिला है, उसे याद करके हृदय भर आता है। एक बार मेरी माताजीने मुझसे कहा कि तुम बदरी-केदार-धामकी यात्रा कर आवो। मैंने अपने मनमें निश्चय कर रखा था कि जब कभी पूज्य बाबूजी बदरीनाथ-केदारनाथ जायेंगे, तब मैं उनके साथ जाऊँगी। जब मैंने माँके कहनेपर ध्यान नहीं दिया तो मेरे बड़े भाईने यह बात पूज्य बाबूजीको बतायी। पूज्य बाबूजीने मुझसे कहा– अभी तो सुविधा है, सुन्दर साथ है तथा घरवाले प्रसन्न मनसे कह रहे हैं, अतः तुम

बदरी-केदारके दर्शन कर आवो।

मैंने पूज्य बाबूजीसे कहा— ऐसा सुना है कि पहाड़ी यात्रामें बड़ी अड़चने आया करती हैं। जब कभी आप चलेंगे, तभी आपके साथ जानेका मेरा विचार है।

पूज्य बाबूजीने अँगुलीमें अँगूठी पहन रखी थी। उन्होंने अपनी अँगुलीसे अँगूठी निकाली और मुझे देकर कहा— इस अँगूठीको तुम अपनी अँगुलीमें पहन लो अथवा अपने पल्लेमें बाँध लो। अब तुम्हारे सामने कोई बाधा नहीं आयेगी। सारी यात्रा भली प्रकारसे हो जायेगी। तुम्हारा मेरे साथ जानेका मन है। पता नहीं, मेरा जाना हो पायेगा या नहीं, पर यदि कभी मैं जाऊँ तो तुम भी चलना। उस समय तुम्हारी दुबारा यात्रा हो जायेगी। पर इस समय तो तुम यात्रा कर आवो।

मैं बदरीनाथ-केदारनाथकी तीर्थ-यात्रापर गयी और सचमुच सारी यात्रा बड़ी सुखद और सुन्दर रही।

पूज्य बाबूजीकी आत्मीयताके अब कई प्रसंग याद आ रहे हैं। एक बार एक स्वजनकी बरातमें पूज्य बाबूजी पड़रौना गये थे। पड़रौना गोरखपुरसे लगभग पैंतालीस मीलकी दूरीपर स्थित एक छोटा-सा नगर है। उन्हें भोजन बरातियोंके साथ करना चाहिये था, पर वे भोजन करने मेरे घर पधारे। जिस दिन पूज्य बाबूजीका मेरे घरपर शुभागमन हुआ, यही कहना चाहिये कि उसी दिनसे हम लोगोंके भाग्योदयका आरम्भ हो गया। हमारा परिवार अनेक प्रकारकी कठिनाइयोंको झेल रहा था। उसी दिनसे वे कठिनाइयाँ धीरे-धीरे दूर होती चली गयीं।

उनके इस वात्सल्यने न जाने कौन-सी दिव्य वस्तु मुझे दे दी। स्वर्गाश्रमकी बात है। मुझे अपने एकादशी व्रतका उद्यापन करना था। उद्यापन-पूजनके आचार्य थे नापासरवाले पूज्य पं. श्रीहरिप्रसादजी पारीक। इस उद्यापनके पूजनका संकल्प स्वयं पूज्य बाबूजीने अर्चकके आसनपर बैठकर लिया। एकादशी व्रतकी भाँति ही मुझे पूर्णिमा व्रतका उद्यापन करना था। पूज्य बाबूजी अस्वस्थ थे तो उन्होंने जीजाजी (सम्मान्य श्रीपरमेश्वरप्रसादजी फोगला) को भेजा। जीजाजीने ही सारी पूजा करवायी। पूजाकी सम्पन्नताके अवसरपर जब आरती होने वाली थी, तब पूज्य बाबूजी भी आ गये। पूज्य बाबूजीका स्वास्थ्य ठीक नहीं था, अतः लोगोंने जानेसे रोका। लोगों द्वारा निवारण किये जानेके बाद भी पूज्य बाबूजी आरतीके अवसरपर पहुँच गये।

जबतक पूज्य बाबूजी हमलोगोंकी आँखोंके सामने थे, तबतक तो हर बातकी सँभाल रखते ही थे और अब आँखोंसे ओझल हो जानेके बाद भी उनकी सँभालमें कोई कमी नहीं आयी है। मेरे लिये तो पूज्य बाबूजी आज भी विद्यमान हैं और अब भी मेरे आरम्भ किये हुए कामको पूरा करते हैं। पूज्य बाबूजीके नित्यलीलामें लीन होनेके कुछ साल बादका एक प्रसंग है। मेरे मनमें श्रीमद्भागवतकी सप्ताह-कथा करवानेकी बड़ी इच्छा थी। कथा कहनेके लिये मैंने वृन्दावनके पूज्य श्रीश्रीनाथजी महाराजसे अनुरोध किया। उन्होंने मेरे अनुरोधको स्वीकार कर लिया और यह निश्चित हो गया कि सप्ताह-कथा पड़रौना नगरमें होगी।

सप्ताह-कथाके लिये पूज्य श्रीश्रीनाथजी महाराजने अपनी स्वीकृति दे दी है, यह बात सुनकर मेरे मिलने-जुलनेवालोंने मुझे बहुत ही हतोत्साहित किया कि तुम कैसे भागवतकी सप्ताह-कथाके विशाल कार्यको सँभाल पाओगी, क्यों कि उनकी कथामें तो बहुत बड़े प्रबन्धकी

आवश्यकता रहा करती है। जब कई लोगोंने एक ओरसे बार-बार इसी बातको कहना आरम्भ कर दिया तो मैं सचमुच डर गयी कि यह काम कैसे पूरा होगा। कमरेके एकान्तमें मैंने पूज्य बाबूजीको याद किया और उनसे कातर स्वरमें प्रार्थना करने लगी— अब यह कार्य आपको ही सँभालना है तथा पूरा करना है।

बाबूजीसे प्रार्थना करनेके बाद मुझे एक विचित्र प्रकारके आश्वासन और शक्तिका अनुभव होने लग गया। मेरे मनमें यह बात बैठ गयी कि सारा काम ठीक प्रकारसे हो जायेगा। भागवतकी सप्ताह-कथाके आरम्भ होनेपर मैंने इतना अवश्य किया कि मुख्य श्रोताके रूपमें पूज्य बाबूजीका तथा इसीके साथ पूज्य श्रीसेठजीका चित्रात्मक विग्रह श्रीमद्भागवतपुराण ग्रन्थके समक्ष प्रस्थापित कर दिया।

पड़रौनामें भागवत-सप्ताहकी कथाके आरम्भ होनेवाले दिवसके पूर्व पूज्य बाबूजी रात्रिके समय स्वप्नमें पधारे तथा मेरे सामने आकर कहने लगे— *तुमने श्रीश्रीनाथजी महाराजको अपनी बुआजीके घरपर, श्रीमन्नालालजी खेतानके पास ठहराया है। उनकी सुख-सुविधाके लिये तो यह ठीक ही किया, पर इस बातका ध्यान रखना कि जबतक महाराजजी कथा कहें, तबतक वे वहाँका अन्न ग्रहण न करें। यदि यह हो पाया तो सप्ताह-कथा तुम्हें विशेष रूपसे फल-दायिनी होगी।*

स्वप्नमें इतना कहकर पूज्य बाबूजी अदृश्य हो गये तथा मेरी नींद तुरन्त टूट गयी। मेरे द्वारा यह कितनी बड़ी भूल हो रही थी? इस दृष्टिसे मैंने न कोई सावधानी बरती थी और न मैंने महाराजजीसे कुछ अनुरोध किया था। स्वप्नमें आकर पूज्य बाबूजीने मुझे सचेत किया। पूज्य बाबूजीके वात्सल्यको सोच-सोच करके मैं बड़ी गद्गद हो रही थी। सबेरा होते ही जल्दीसे नहा-धोकर मैं बुआजीके यहाँ पूज्य महाराजजीके पास गयी। उन्हें प्रणामकर स्वप्नवाली सारी बात मैंने उनसे बता दी। स्वप्न सुनकर पूज्य महाराजजीको भी बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने मुझसे कहा— लाली! अब ऐसा ही होगा। इस दृष्टिसे मैं पूर्ण सावधान रहूँगा।

पूज्य महाराजजीके वचनोंको सुनकर मुझे बड़ा संतोष हुआ। मैं तो इस बातसे फूली-फूली फिरती थी कि पूज्य बाबूजीने मेरी एक बहुत बड़ी भूलको सुधार दिया। यदि पूज्य बाबूजी स्वप्नमें नहीं बताते तो मेरा ध्यान उस ओर जाता ही नहीं। भागवतकी सप्ताह-कथामें विघ्न-बाधाएँ कम नहीं आयीं। आँधी-वर्षाके रूपमें दैवी प्रकोपका भी सामना करना पड़ा, परन्तु पूज्य बाबूजीकी कृपासे सारी बाधाएँ दूर हो गयीं और सप्ताह-कथाका सारा कार्य विधि-पूर्वक सम्पन्न हो गया।

वस्तुतः पूज्य बाबूजीके पावन चरणोंका आश्रय मेरे लिये एक बहुत बड़ा सहारा है, ऐसा सहारा, जो व्यर्थ होता ही नहीं। भगवानकी कृपासे मुझे छोटी आयुमें जो सहारा मिला, उसने न जाने कितने संकटोंसे मुझे उबारा है और सदा मेरी सँभाल करता रहा है। ■

सौ. श्रीविजयलक्ष्मी पोद्दार

अस्पतालके द्वारपर

कन्याका जन्म होता है पितृ-गृहमें और भावी जीवन व्यतीत होता है श्वसुरालमें। श्वसुरालमें आते ही नवीन संसारमें प्रवेश होता है, नवीन व्यक्तियोंसे परिचय होता है, नवीन सम्बन्धकी स्थापना होती है, नवीन सम्पर्कका आरम्भ होता है और नवीन वातावरणमें ढलना पड़ता है। इस नवीनतामें प्रवेश करते ही मुझे ऐसा लगा कि मैं एक भक्त-परिवारमें आयी हूँ। भक्त-परिवार बड़े भाग्यसे मिलता है। मैंने देखा कि मेरी सास और मेरे श्वसुर, दोनों ही श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारमें बड़ी श्रद्धा रखते हैं। मेरा नवीन प्रवेश पोद्दार परिवारमें हुआ था, अतः पहले मैंने यही समझा कि श्रीभाईजीके नामसे विख्यात श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार हमारे पोद्दार परिवारके कोई पूज्य व्यक्ति होंगे, पर शीघ्र ही वास्तविक तथ्य सामने आ गया। मैंने पाया कि पारिवारिकताकी भावनासे बहुत ऊपर श्रीभाईजी हमारे घरमें अति श्रद्धेय हैं अपने महान संतत्वके कारण। उस महान संतत्वका अवतरण हमारे पोद्दार कुलमें हुआ, यह हमारे कुलका परम सौभाग्य है। मेरी सासूजी और श्वसुरजी, दोनोंके लिये श्रीभाईजी परम श्रद्धास्पद हैं। उनके शब्दोंका हमारे परिवारके जन-जनमें भगवदीय वाणीके समान समादर है। वे हमारे परिवारके हर दृष्टिसे सर्वस्व हैं। लोक-परलोक-परमार्थकी दृष्टिसे वे हमारे लिये परम सुहृद, परम हितैषी स्वजन हैं। *'हित परलोक लोक पितु-माता'।* आज हमारे परिवारमें गृहस्थ-जीवनके निर्वाहके लिये कामकाजके रूपमें जो व्यापार चल रहा है, वह उनकी कृपाके फलस्वरूप ही है। आगामी प्रसंगने तो मेरे मनपर एक स्थायी छाप लगा दी।

श्रद्धेय श्रीभाईजीने सन् १९७१ में महाप्रयाण किया और इसके कुछ साल बाद मेरे पूज्य श्वसुरजीका भी निधन हो गया। अगली बात सन् १९८५ के फरवरी मासकी है। मेरी सासूजी सत्संगके लिये वृन्दावन गयी हुई थीं। वहीं उनकी तबीयत खराब हो गयी। रुग्णताकी सूचना मिलते ही हमलोग दिल्लीसे वृन्दावन गये और उनको कारमें बैठाकर दिल्ली ले आये। घरके द्वारपर पहुँचनेके बाद जब कारसे उतरनेका अवसर आया, तब मेरी सासूजीको लगा कि दोनों पैर काम नहीं कर रहे हैं। उनको गोदमें उठाकर घरमें लाया गया। धीरे-धीरे स्पष्ट हो गया कि उनके दोनों पैरोंमें लकवाका दौरा पड़ गया है। तुरन्त चिकित्साकी व्यवस्था की गयी। डाक्टरोंने सलाह दी कि तत्काल अस्पतालमें भर्ती करा दिया जाय, जिससे भली प्रकार चिकित्सा हो सके। उनको दिल्लीके विख्यात होली फैमिली हॉस्पिटलमें भर्ती करानेके लिये ले जाया गया। लकवाका प्रभाव पैरोंसे ऊपरकी ओर सारे शरीरपर क्रमशः फैलता जा रहा था और उसके प्रभावमें दोनों पैर तो भली प्रकार आ ही गये थे।

मेरी सासूजी कारमें लेटी हुई थीं और कार होली फैमिली हॉस्पिटलके द्वारपर खड़ी थी। उनको शीघ्र भर्ती करानेके लिये हमलोग भाग-दौड़ कर रहे थे। उसी समय मेरी सासूजीने एक विचित्र बात देखी कि पूज्य श्रीभाईजी धीरे-धीरे मोटरकारकी ओर आ रहे हैं। वे धोती-कुर्ता पहने हुए हैं तथा उनके हाथमें छड़ी है। उन्होंने आकर अपने दाहिने हाथकी पाँचों अँगुलियाँ खड़े

रूपमें सासूजीके कमरके पास जंघेके अन्तिम छोरपर रख दी। इसके बाद वे चले गये।

जहाँ श्रीभाईजीने अपनी अँगुलियाँ रखी थी, उसके ऊपर लकवाका प्रभाव फैल नहीं सका, मानो लकवाके प्रभावके लिये उन्होंने सीमा-रेखा लगा दी। *'बढ़त बिंधि जिमि घटज निवारा'।* यदि मल-मूत्रके द्वार लकवासे प्रभावित हो जाते, तब तो परेशानीकी सीमा नहीं होती। कष्ट अब भी कम नहीं है, पर यदि लकवाके प्रभावका विस्तार ऊपरकी ओर और बढ़ जाता तो उस कष्टकी कल्पना मात्रसे ही मन काँप उठता है। यह जो कष्ट आया, वह कोई प्रारब्ध ही होगा, पर ऊर्ध्वांगके लकवासे ग्रस्त होनेपर जो कष्ट होता, उस भीषण कष्ट-भोगकी अति विषम स्थितिसे श्रीभाईजीने सीमा-रेखा स्थापित करके मेरी सासूजीको बचा लिया। वे तो हमारे परिवारका संरक्षण परोक्ष रूपसे सदैव करते रहते हैं। आज भी उनका वात्सल्य हमारा बहुत बड़ा सहारा है। ■

श्रीमोतीलालजी पारीक

[१] कुष्ट रोगसे मुक्ति

बात सन् १९३३ की है, जब मैं आसामके शिवसागर जिलेमें नाजिरा नामके कस्बेमें रहा करता था। नाम बतलाना उचित नहीं, पर मेरे उन स्वजनको कुष्ट रोग हो गया। कुष्ट रोगका अभी आरम्भ ही था। कुष्ट रोगको अपने शरीरपर देखकर वे बड़े बेचैन हो उठे। अभी तो यह कुष्ट वस्त्रसे ढका हुआ है, पर जब यह फैलकर प्रकट हो जायेगा, तब तो मैं समाजके लिये अस्पृश्य हो जाऊँगा, ऐसा सोचकर उनके मनकी व्यथा बढ़ती चली जा रही थी। वे बार-बार सोच रहे थे— फिर मेरी पत्नी और मेरे बच्चे मुझसे घृणा करने लगेंगे। घरवाले मेरा परित्याग कर देंगे। समाजका एक-एक व्यक्ति मुझसे बचना चाहेगा।

भावी अस्पृश्य एवं परित्यागपूर्ण जीवनकी कल्पना जितनी अधिक होती, उतनी ही उनकी बेचैनी बढ़ती जाती। उन्होंने कातर मनसे प्रार्थना आरम्भ कर दी, जिससे इस रोगसे छुटकारा मिल सके। कातर प्रार्थना कई दिनतक चलती रही।

एक रात पूज्य बाबूजीने स्वप्नमें दर्शन देकर कहा— *न घबराने की जरूरत है और न निराश होने की। तुम 'हरे राम' महामन्त्रका जप करो। भगवत्कृपासे सारा मंगल होगा।*

उस व्यक्तिकी नाममें निष्ठा तो पहलेसे ही थी। अब यह निष्ठा और बढ़ गयी। वह श्रद्धापूर्वक जप करने लगा और जपके प्रभावसे उसका कुष्ट रोग पन्द्रह दिनके अन्दर सदाके लिये चला गया।

[२] अक्षय कोठार

पूज्य बाबूजीकी लाडली सुपुत्री बाई सावित्रीके विवाहके अवसरकी बात है। बाई सावित्रीका विवाह हुआ था सं. १९९८ वि. (सन् १९४१ ई.) में। बाबूजीका परिचय-क्षेत्र अति विस्तृत है। हर एक व्यक्ति उक्त अवसरपर उपस्थित होना चाहता था। लोग आये भी। रतनगढ़में बाई सावित्रीका विवाह खूब धूमधामसे सम्पन्न हुआ।

विवाहकी मुख्य जीमनवार (सज्जनगोठ) का प्रसंग है। भाँति-भाँतिकी मिठाइयाँ बनी हैं, पकवान बने हैं। पंगत-पर-पंगत लग रही है। लोगोंकी भीड़-की-भीड़ जीम (भोजन कर) रही है। कुछ समय बाद मिठाई-भण्डारके कोठारीको ऐसा लगा कि मिठाई-पकवान आदि समाप्त होने वाले हैं। अभीतक तो केवल ऊपर-ही-ऊपरके लोग जीम गये हैं। बरात तो अभी जीमी ही नहीं है। कोठारीने पक्का पता लगाना चाहा कि लगभग कितने व्यक्ति और जीमनेवाले हैं। संख्या काफी थी। संख्याकी तुलनामें कोठारकी अल्प सामग्री देखकर कोठारीके चेहरेपर चिन्ताकी रेखाएँ उभर आयीं।

कोठारीने जाकर माँसे कहा। माँके मनमें चिन्ताका व्याप्त होना स्वाभाविक था, पर चिन्ताके साथ एक निश्चिन्तता भी थी। माँने यह बात बाबूजीको कहलवायी। बाबूजी यह संवाद सुनकर भण्डारकी ओर आये और कहा— दिखाओ तो सही कि कितनी मिठाई है। सब कहते हैं कि मिठाई कम पड़ गयी है, मिठाई कम पड़ गयी है। जरा मैं भी तो देखूँ।

ऐसा कहकर बाबूजी कोठारके भीतर गये। सारी मिठाइयोंको एक दृष्टिसे देख गये। अपनी 'दृष्टि' से देख जानेके बाद बाबूजीने कहा— लोग व्यर्थ ही शोर कर रहे हैं। सब तो ठीक है। कहाँ मिठाई कम है ?

इस प्रकार कहते-कहते बाबूजी कोठारके बाहर चले गये और अन्य काममें लग गये। वे भले ऐसा कह गये हों, पर बाबूजीकी बातपर उस कोठारीको विश्वास नहीं हुआ। मिठाईकी मात्रा और जीमनेवालोंकी संख्या, दोनों बातें उसके आँखोंके सामने थी, पर उसके आश्चर्यकी तब सीमा नहीं रही, जब कि सारी बरातके जीम जानेके बाद भी मिठाई-पकवान आदि बहुत अधिक बच गये। कोठारीके मनमें यही बात जम गयी कि यह बाबूजीके 'आने और देखने' का प्रभाव था।

[३] आदमी नहीं, देवता हैं

अपकार करनेवालेका उपकार करना पूज्य बाबूजीके स्वभावका स्वरूपभूत अंग था। हमको और आपको पर-हितकी बात सोचनी पड़ती है तथा सोचकर भी शायद हम वैसा नहीं कर पायें, परंतु बाबूजी सहज ही हानि पहुँचाने वालेको लाभ पहुँचाते थे। रतनगढ़में बाबूजीकी हवेलीके बगलमें पं. श्रीमोतीरामजी बोगड़की हवेली है। पं. श्रीमोतीरामजीके ज्येष्ठ भाई पं. श्रीराधाकृष्णजी बोगड़ने अपने हवेलीके एक तल्लेपरसे बाबूजीके नोहरेमें मोरी (जंगला) निकाल ली। लोगोंने उनसे कहा— यह आप क्या कर रहे हैं ? उधर श्रीपोद्दारजीका नोहरा है। कानूनकी दृष्टिसे आप उनकी तरफ जंगला नहीं निकाल सकते। आप इसे बन्द कर दें।

लोगोंने उनको मना किया, पर वे भला क्यों मानने लगे ? इसके बदलेमें वे उलटकर बाबूजीके प्रति अभद्र शब्द कहने लगे। पड़ोसके लोग पहुँचे बाबूजीके पास और उनकी शिकायत करते हुए बाबूजीको वे लोग बतलाने लगे— भाईजी, देखिये। उन पण्डितजी महाराजने आपके नोहरेमें जंगला निकाल लिया है। उन्हें समझाया जाता है तो वे गलत ढंगसे पेश आते हैं।

बाबूजी उनकी बात चुपचाप सुनते रहे। कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। उन्हीं लोगोंमेंसे एकने यह भी कहा— वह ब्राह्मण कुछ अशिष्ट तो है, पर है अभाव-ग्रस्त।

बाबूजीने अभाव-ग्रस्त वाली बात पकड़ ली। शिकायत करने जो लोग आये थे, उनको किसी प्रकार चुप कराकर वापस भेज दिया। बाबूजीने तुरन्त मन-ही-मन निर्णय लिया कि भले उसकी क्रिया ठीक न हो, पर वह है तो अभाव ग्रस्त, अतः उसकी सेवा अपनेको करनी ही चाहिये। बाबूजीने मुझको बुलाया और मेरे हाथमें एक लिफाफा देकर कहा— यह लिफाफा पं. श्रीराधाकृष्णजी बोगड़को दे आइये।

मुझे भी पता नहीं था कि लिफाफेमें क्या है। मेरा अनुमान था कि इस लिफाफेमें कोई पत्र होगा उनको समझाने-बुझानेके लिये। मैंने जाकर वह लिफाफा श्रीबोगड़जीको दे दिया। उन्होंने भी यही अनुमान लगाया कि जंगला निकालनेके बारेमें कोई पत्र श्रीभाईजीने भेजा है और अवश्य ही इस पत्रमें कोई डाँट-डपट अथवा धमकी दी गयी होगी। अपने इस अनुमानके आधारपर श्रीबोगड़जी गरज करके मुझसे कहने लगे— मोती महाराज! ठहरो। इस लिफाफेका जबाब भी हाथ-के-हाथ लेते जावो। जबाब देनेमें देर क्यों?

मुझसे इतना कहकर उन्होंने लिफाफा खोला। उस लिफाफेमें सौ-सौके कई नोट थे और साथमें एक पत्र था। पत्रमें प्रणाम निवेदन करनेके उपरान्त लिखा था— इन्हें आप अपने काममें ले लेंवे और कोई भी काम हो तो सेवा फरमावें।

पत्रको पढ़कर और बाबूजीकी विनम्रता देखकर श्रीबोगड़जी तो पानी-पानी हो गये। मनमें सद्भाव उमड़ने लगा। वे मुझसे इतना ही कह पाये— श्रीभाईजी आदमी नहीं, देवता हैं।

[४] दोष मेरा था

श्रीचिरंजीलालजी गोयनकाकी सुपुत्रीका कानपुरमें विवाह था। इस विवाहमें बाबूजी भी गये थे। विवाह बड़ी धूमधामसे सम्पन्न हुआ। चाव और धूमधामके अतिरेकमें वर-पक्षकी ओरसे वेश्या-नृत्यका भी आयोजन था और वह नृत्य हुआ भी।

वेश्या-नृत्यकी बात पूज्य श्रीसेठजी (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) के पास पहुँची। पूज्य श्रीसेठजीको बुरा लगा। बुरा लगना स्वाभाविक भी था। अहितकर परम्पराओं तथा कुरीतियोंको कैसे सहन किया जा सकता है? गर्मीके दिनोंमें श्रीचिरंजीलालजी स्वर्गाश्रम गये और पूज्य श्रीसेठजीको प्रणाम किया। वहींपर बाबूजी भी बैठे हुए थे। पारस्परिक कुशल समाचार पूछनेके बाद पूज्य श्रीसेठजीने वेश्या-नृत्यवाली चर्चा छेड़ दी। पूज्य श्रीसेठजीने वेश्या-नृत्यकी निन्दा करते हुए कहा— आपने अपनी पुत्रीके विवाहमें यह नृत्य क्यों होने दिया?

श्रीचिरंजीलालजी चुप-चाप सुन रहे थे। वे कुछ कहें, इसके पहले ही तुरन्त पूज्य श्रीसेठजीसे बाबूजीने कहा— आप इन्हें क्यों कहते हैं? यह तो मेरे प्रति कहना चाहिये। मैं भी तो वहीं पर था। यह दोष तो मेरा ही है, जो वहाँ रहकर भी अपने सामने मर्यादाका अतिक्रमण होने दिया।

पूज्य श्रीसेठजी अब क्या बोलते? श्रीचिरंजीलालजीपर मढ़े जानेवाले दोषको पूज्य बाबूजीने स्वयंपर झेल लिया। उनपर आँच आने ही नहीं दी। निन्दनीय कार्य निन्दनीय ही होता है। ऐसे हेय कार्यके प्रति त्याज्य-भावना मनमें उदित होते ही उस व्यक्तिको और अधिक संकोचमें डालना उचित नहीं। किसीके सामाजिक सम्मानके प्रति बाबूजी बड़े सजग रहा करते थे।

[५] अपनी कोठी देना

दौहित्री राधाके शुभ विवाहका मंगल अवसर है। बचपनसे लेकर अबतक जो नानाजी (अर्थात् बाबूजी) के पास रही और जो नानी-नानाके लाड़-दुलारमें पली, उसी लाड़ली राधाके विवाहकी तैयारियाँ हो रही हैं। आवश्यक वस्तुओंका संग्रह हो रहा है, मंगल संदेश मँगवाये जा रहे हैं, इस प्रकार विविध आवश्यक कार्य सोल्लास किये जा रहे हैं। कन्या-पक्षकी ओरसे आनेवाले अतिथियोंको तथा वर-पक्षकी ओरसे आनेवाले बरातियोंको ठहरानेके लिये विभिन्न स्थानोंपर आवासकी व्यवस्था हो रही है। जनवासेमें बरात ठहरेगी। जनवासा सारी आधुनिक सुविधाओंसे पूर्ण हैं। मंगल परिणय गीतावाटिकाके विशाल पंडालमें होगा। आनेवाले सगे-सम्बन्धी अमुक-अमुक स्थानपर ठहरेंगे। सबकी व्यवस्था सोच ली गयी, पर बाबूजीके अपने समधी, दौहित्री राधाके दादा सम्मान्य श्रीशिवभगवानजी फोगलाके ठहरनेका स्थान अभीतक तय नहीं हो सका। विवाहकी सारी व्यवस्था, सारे आयोजन, सारी सम्पन्नता, सारे उत्तरदायित्वका भार बाबूजीपर है, पर विवाहके सारे नेगचार राधाके दादी-दादाजी ही करेंगे। श्रीशिवभगवानजी फोगला कन्या-पक्षमें सबसे वरिष्ठ व्यक्ति हैं। वे गोरखपुर आ रहे हैं और आ रहे हैं केवल अपनी पौत्री राधाके विवाहके लिये, अतः एक प्रकारसे वे भी अतिथि हैं। जो भी हो, वे बाबूजीके समधी हैं और दौहित्री राधाके दादाजी हैं, अतः उनको ऐसे स्थानपर ठहराना है, जो उनके पदके अनुकूल हो तथा परम सम्मानास्पद हो। अपनी यह समस्या लेकर बाबूजी माँके पास गये। बाबूजीके पास इसका कोई हल नहीं था, पर हल निकालना भी आवश्यक था। बाबूजीने कहा— राधाके दादा श्रीफोगलाजी आ रहे हैं और अभीतक यह तय नहीं हो सका कि उनको कहाँ ठहराया जाय?

माँने सहज भावसे पूछा— क्यों?

बाबूजीने कहा— अपने जो अतिथि आयेंगे, उनको ठहरानेकी व्यवस्था हो गयी। बरातके ठहरनेकी व्यवस्था हो गयी, पर श्रीफोगलाजीके ठहरनेकी व्यवस्था नहीं हो पायी है। वे हमारे लिये परम सम्माननीय हैं। क़न्या-पक्षकी ओरसे राधाके विवाहके सभी नेगचार वे ही करेंगे, अतः उनको ऐसे स्थानपर ठहराना चाहिये, जिससे उनको परम महत्त्व मिले।

माँने अति सहज भावसे उत्तर दिया— इसमें उलझनकी क्या बात है? बगीचेकी यह कोठी दे दीजिये उनके ठहरनेके लिये।

बाबूजीने पूछा— फिर हमलोग कहाँपर रहेंगे?

माँने समस्याका हल प्रस्तुत करते हुए कहा— कुएँके पास एक तम्बू तान लेंगे, उसमें रहेंगे और बासेमें भोजन कर लेंगे।

बाबूजीने तुरन्त कहा— तम्बू गाड़नेकी क्या आवश्यकता है? सम्पादकीय विभागका कार्यालय है, उसमें हमलोग रह जायेंगे, इस कोठीमें राधाके दादी-दादाजी ठहर जायेंगे। इस प्रकार बात भी सुन्दर बन जायेगी।

और हुआ भी यही। सौभाग्याकांक्षिणी राधाके दादी-दादाजी ठहरे कोठीमें तथा नानी-नानाजी रहे कार्यालयमें। माँके सुझावने सारी समस्या हल कर दी।

यह प्रसंग बाबूजीके कार्य करनेकी सरस प्रक्रियाका परिचय देता है। कार्य-सम्पादनके लिये

बाबूजी जिस स्नेहसनी शैलीका आश्रय लिया करते थे, उसकी झलक प्राप्त करनेके लिये यह एक उल्लेखनीय उदाहरण है। ऐसा निर्णय बाबूजी स्वयं ही स्वतन्त्र रूपसे ले सकते थे, पर यह निर्णय उन्होंने लिया पारस्परिक परामर्शके उपरान्त। सहयोग-आकर्षण एवं सम्मान-दानका यह एक ऐसा प्रसंग है, जो पारस्परिक व्यवहारको मधुरातिमधुर बना देता है। ■

श्रीओमप्रकाशजी सिंहानिया

स्वप्नमें सदुपदेश

सं. १९९३ की बम्बईकी एक घटना है। श्रीपोद्दारजीके एक मित्र अपनी समस्त सम्पत्ति एक वेश्याके नाम रजिस्ट्री करने जा रहे थे। एक रात उन्हें अचानक स्वप्नमें श्रीपोद्दारजीके दर्शन हुए। उन्हें लगा कि श्रीपोद्दारजी स्पष्ट रूपसे इस कार्यसे उन्हें रोक रहे हैं। निद्रा भंग होनेपर उन्हें कुछ आश्चर्य हुआ, किन्तु श्रीपोद्दारजीकी आज्ञा शिरोधार्य करके उन्होंने सम्पत्ति वेश्याके नाम नहीं की और फिर श्रीपोद्दारजीको उस सम्बन्धमें एक विस्तृत पत्र लिखकर सारी स्थिति बता दी। ■

श्रीरामगोपालजी थरड

भोजनालयका अनुभव

पूज्य बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) के जीवनकालमें ही मैंने आदरणीय भाई श्रीभगवानदासजी सिंहानियाको श्रीराधाष्टमीके भोजनालयकी व्यवस्थामें सहयोग देना आरम्भ कर दिया था। बाबूजीकी कृपासे भोजनालयका कार्य सदैव ठीक प्रकारसे पूरा हो जाया करता था, पर प्रति वर्ष, उन दिनों पूज्य बाबूजीकी कृपाकी एक विचित्र बात अनुभवमें आया करती थी।

श्रीराधाष्टमीका मुख्य उत्सव अष्टमी और नवमीको होता है, किन्तु भारतके विभिन्न प्रदेशोंसे भगवत्प्रेमियोंका आना द्वितीया-तृतीया तिथियोंसे आरम्भ हो जाता था। चतुर्थी तिथिसे लगभग तीन-चार सौ लोगोंके भोजनका प्रबन्ध अलग भोजनालयमें होने लगता था। अष्टमी-नवमीको प्रतिदिन लगभग डेढ़-दो हजार व्यक्ति भोजन करते थे।

आगन्तुक अतिथियोंके भोजनके लिये अलग भोजनालय इसलिये चालू किया जाता था कि सबको सुविधा और सम्मानपूर्वक उत्तम भोजन मिल सके। चतुर्थी तिथिसे लेकर सप्तमी तिथितक अर्थात् इन चार दिनोंमें प्रतिदिन हमें अनुमान हो जाता था कि आज सम्भवतः इतनी संख्यामें व्यक्ति भोजन करेंगे और उनके लिये प्रबन्ध भी उसी प्रकार कर लिया जाता था, किन्तु महोत्सवके मुख्य दिन अष्टमी-नवमीको हम अनुमान भी नहीं लगा सकते थे कि कितने व्यक्ति प्रसादी भोजन पायेंगे। अष्टमी-नवमीके दिन भोजन करनेवालोंपर कोई प्रतिबन्ध नहीं रहता था। हर एकको भोजनकी छूट रहती थी, अतः कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि हजार या डेढ़ हजार या दो हजार या कितने व्यक्ति भोजन करेंगे। हमारे पास जितने बड़े-बड़े पात्र होते थे, उन्हें

भरकर खाद्य सामग्री सिद्ध कर ली जाती थी। प्रातः भोजन बनवानेके कार्यको आरम्भ करते समय और रात्रिमें अधिकांश व्यक्तियोंके भोजन कर चुकनेके समय, इन दोनों समयोंपर हमारे मनमें बड़ी ही धुकधुकी रहती थी कि यदि कहीं भोजन समाप्त हो गया, तब क्या होगा? भोजनालयके द्वारपर आनेवालेको भोजन अवश्य देना है, पर भय लगा रहता था कि कहीं भोजनकी सामग्री समाप्तिपर न आ जाय। भोजन सामग्री यदि समाप्त हो जाय तो फिरसे बनानेके लिये न तो रसोइयोंसे और न सहयोगी कार्यकर्ताओंसे कहनेका साहस होता था, इसीलिये कि सुबहसे राततक कार्य करनेके कारण वे लोग अत्यधिक थके रहते थे। उस विवशताकी स्थितिमें मैं मन-ही-मन पूज्या माँका तथा पूज्य बाबूजीका स्मरण करता तथा उनसे प्रार्थना करता— लाज आपके ही हाथमें है। भोजनालयके उत्तरदायित्वकी सम्पन्नता आपकी शक्ति ही कर सकती है।

फिर लगता यह है कि जैसे जादू हो गया हो। न कोई भूखा लौटता और न सिद्ध भोजन-सामग्री व्यर्थ जाती, मानो जितने लोग भोजन करने वाले थे, उतने लोगोंके लिये ही भोजन बना हो। पूज्या माँ और पूज्य बाबूजीके प्रति मूक निवेदन सारे उत्तरदायित्वको अपने आप सुन्दर रीतिसे सुसम्पन्न कर देता, यह अनुभव एक बार नहीं, लगभग हर राधाष्टमीपर होता था। उन क्षणोंमें मनकी आस्था पूज्य बाबूजीके प्रति कितनी अधिक बढ़ जाती, मैं उसे कैसे व्यक्त करूँ। ऐसे समर्थ श्रीचरणोंके आश्रयको मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ। ■